१८५७ की कहानी

प्राणनाथ वानप्रस्थी



१८५७ की कहानी

प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम के अमरसेनानियों की गाथा

प्राणनाथ वानप्रस्थी

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मूल्य : एक रुपया पचास पैसे
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
मुद्रक : रामसीना प्रिंटरी, दिल्ली-६

1857 KI KAHANI by Prannath Vanprasthi

भेंट

उन वीरों की स्मृति में

जिन्होंने

१८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम

में

अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया

दो शब्द

संसार के इतिहास में स्वतन्त्रता के लिए बड़े-बड़े युद्ध लड़े गए। अपने देश में अंगरेज़ों के अत्याचार से दुखी होकर भारतवासी हिन्दुओं और मुसलमानों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर उन्हें देश से बाहर खदेड़ने का भरपूर यत्न किया। यदि भारतवर्ष के सभी राजा इस क्रान्ति का साथ देते, तो आज इतिहास और ही होता। पर ऐसा हुआ नहीं। और बहुत बड़ा बलिदान देने पर भी यह क्रान्ति सफल न हुई। इसके तीन मुख्य कारण हैं—

(१) अंगरेज़ किसी भी भारतीय सेना से अधिक अनुभवी और योग्य थे। उनका एक संगठन और एक केन्द्र था। एक सेना के हारने पर झट दूसरी सेना पहुंच जाती थी। परन्तु क्रान्तिकारियों का कोई संगठित केन्द्र न था।

(२) यदि कोई भारतीय सेनापति युद्ध में मारा जाता, तो भारतीय सैनिक अपनी हार मान लेते थे। परन्तु अंगरेज़ों में एक सेनापति के मरने पर दूसरा उसका स्थान सम्भाल लेता और युद्ध बराबर चलता रहता।

(३) बड़े-बड़े भारतीय राजाओं, नवाब हैदराबाद, महाराजा नेपाल, पंजाब के सभी राजा और पंजाब की सिख सेनाओं ने धन और जन से अन्त तक अंगरेज़ों का साथ दिया। उन्होंने क्रान्तिकारियों को दबाने के लिए अंगरेज़ों की पूरी सहायता की।

यह सब कुछ होते हुए भी क्रान्तिकारी इस शान से लड़े कि एक स्थान पर भी अंगरेजों के सामने घुटने नहीं टेके, और अन्त तक लड़ते ही रहे। जब तक अन्तिम सैनिक जीवित रहा, वे नहीं झुके। स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास सोने के अक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

हरिद्वार
ज्येष्ठ पूर्णिमा, २०१४ —लेखक

क्रम

पूना राज्य का उत्तराधिकारी

नानासाहब पेशवा
और क्रान्ति का आरंभ

○ ○ ○ ○ ○

नानासाहब के पिता का नाम माधवराव और माता का नाम गंगाबाई था। गंगाबाई का स्वभाव इतना सरल और सच्चा था कि पेशवा दरबार की सभी देवियां माता गंगाबाई के गुणों की प्राय: चर्चा करती रहती थीं। इसी होनहार माता के पुत्र नानासाहब भी सरल स्वभाव और सौन्दर्य की मूर्ति थे। सब दरबारी इस बालक को हृदय से चाहते थे।

ज्यों-ज्यों यह बालक बड़ा होता गया, इसके गुणों में वृद्धि होने लगी। सभी लोग इसके गुणों पर मोहित थे। तलवार चलाना, भाला चलाना, बन्दूक चलाना, घुड़सवारी आदि सभी विद्याएं इसने शीघ्र ही सीख लीं। पढ़ने-लिखने का भी अभ्यास चलता रहा। छोटी आयु में ही इसने भारतवर्ष और अपने पेशवा-परिवार का सारा इतिहास अच्छी तरह पढ़ लिया था। जब-जब दरबार में कोई भी राजनीतिक चर्चा होती, नाना बड़े ध्यान से सुनता।



नानासाहब का बर्ताव इतना मधुर था, कि जो भी अंगरेज़ अधिकारी उससे मिलते, वे उसके मित्र बन जाते। नाना उनकी आवभगत पूरे शाही ढंग से करता और उनका पूरा आदर करता। यह सब कुछ होते हुए भी नाना स्वयं किसीसे मिलने नहीं जाता था, क्योंकि वे प्रायः सभी सैनिक अधिकारी होते थे और उन्हें झुककर सम्मान देना पड़ता था, जिसके लिए वह कदापि तैयार नहीं था। वह अपने शाही मान-मर्यादा को किसी भी मूल्य पर ठेस लगने न देता था।

नानासाहब का पूरा नाम धोंडोपन्त था। अन्तिम पेशवा राजा बाजीराव द्वितीय का यह गोद लिया हुआ पुत्र था। ७ जून, सन् १८२७ को बाजीराव पेशवा ने शास्त्रोक्त विधि के अनुसार धोंडोपन्त को गोद लिया और अंगरेज़ सरकार को सूचना

दे दी। उस समय अंगरेज़ अधिकारियों ने कोई एतराज़ नहीं किया। सन् १८१८ में ही अंगरेज़ों ने बाजीराव पेशवा से एक सन्धि कर उसका राज्य हड़प लिया था और इसके बदले में बाजीराव पेशवा और उसके वंशजों को आठ लाख रुपया वार्षिक पेन्शन देना स्वीकार किया गया था। कानपुर के पास बिठूर में उसे एक जागीर भी दी गई। तभी से बाजीराव पेशवा पूना राज्य को छोड़ बिठूर में आकर रहने लग गया था।

२८ जनवरी, सन् १८५१ को बाजीराव पेशवा द्वितीय की मृत्यु हो गई। अंगरेज़ों ने उसके मरते ही आंखें बदल लीं और पेन्शन बन्द कर दी। उन्होंने युक्ति यह दी कि पेशवा परिवार ने पहले ही बहुत धन एकत्रित कर लिया है, अतः अब उन्हें धन की आवश्यकता नहीं है। बाजीराव पेशवा द्वितीय सदा आड़े समय में अंगरेज़ों के काम आता रहा था। सिखों के साथ युद्ध के समय और अन्य समयों पर भी इसने सदा धन और जन से अंगरेजों की भरपूर सहायता की थी। इस नाटक से नाना के हृदय को बड़ी गहरी चोट लगी और वह उदास रहने लगा। परिणाम यह हुआ कि उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरने लगा, परन्तु फिर भी अंगरेज़ों के प्रति उसके बर्ताव में कोई अन्तर न आया। उसने अपनी सज्जनता को किसी भी मूल्य पर हाथ से जाने देना स्वीकार न किया।

इन दिनों एक मुसलमान युवक अज़ीमुल्लाखां से नानासाहब का परिचय हुआ। यह नवयुवक बिठूर का ही रहने वाला और बहुत साधारण परिवार का बालक था। यह होनहार बालक परिश्रम और सत्य आचरण के बल पर उन्नति

करता गया। दरिद्र होते हुए भी इस बालक ने कभी अपने स्वाभिमान को ठेस नहीं लगने दी। अंगरेज़ों के पास खाना बनाने का काम करते हुए और उनकी सेवा करते हुए इसने अंगरेज़ी और फ्रेंच भाषा भी अच्छी तरह सीख ली। जब पढ़-लिखकर योग्य हो गया, तो परीक्षा देने के लिए कानपुर में एक स्कूल में प्रविष्ट हुआ। धीरे-धीरे यह स्कूल का अध्यापक बन गया। इसकी योग्यता और सदाचार की चर्चा प्रायः सभी किया करते थे। एक बार छुट्टियों के दिनों में यह नवयुवक अपने घर बिठूर आया, तो नानासाहब से भेंट हो गई। नानासाहब इसके गुणों पर मोहित हो गए।

इधर नानासाहब की पेन्शन बन्द हो चुकी थी। सन् १८५४ में नानासाहब ने अपने साथियों से मन्त्रणा कर अज़ीमुल्ला खां को इङ्गलैंड भेजा, ताकि वहां जाकर अपील की जाए। चूंकि यह नवयुवक बहुत समय अंगरेज़ों के बीच रहा था, इसे उन लोगों के साथ अंगरेज़ी में बातचीत करने का बहुत अच्छा अभ्यास था। लन्दन पहुंचते ही वहां भी अज़ीमुल्ला खां अपने गुणों से प्रसिद्ध हुआ। वह एक-एक कर सभी अंगरेज़ अधिकारियों से मिला और नानासाहब की अपील को उनके सामने रखा। परन्तु वहां तो नियत ही बिगड़ी हुई थी। उन्होंने कुछ विचार करने के बाद अपील को अस्वीकार कर दिया। अब तो अज़ीमुल्ला खां अंगरेज़ों के विरुद्ध भड़क उठा।

इस बीच में उसकी सतारा के रंगोजी बापू से भेंट हुई। सतारा का राज्य भी अंगरेज़ों ने छीन लिया था। वहां के राजा की ओर से रंगोजी बापू इङ्गलैण्ड में अपील करने आया

हुआ था। यह अपील भी अंगरेज़ों ने अस्वीकार कर दी। अब तो अज़ीमुल्ला खां और रंगोजी बापू ने यहीं बैठकर निश्चय किया कि किस प्रकार अंगरेज़ों से बदला लेना चाहिए। रंगोजी बापू तो सीधा भारत लौट आया और क्रांति की तैयारियों में जुट गया। उसने दक्षिण के सभी राज्यों में क्रान्ति का प्रचार किया।

अज़ीमुल्ला खां लन्दन से रूस और अन्य यूरोपीय देशों से होता हुआ टर्की की राजधानी में पहुंचा। वह सभी देशों से भारत के लिए सहानुभूति प्राप्त कर स्वदेश लौट आया। इसने उन सभी राष्ट्रों के पास अंगरेज़ों के अत्याचार का भण्डा फोड़-और उनसे सहायता का विश्वास भी प्राप्त किया।

भारत लौटने पर अज़ीमुल्ला खां, तात्याटोपे और नानासाहब दिन-रात योजनाएं बनाते रहे कि किस प्रकार अंगरेज़ों को देश से निकाला जाए। गुप्त रूप से सभी राजाओं, नवाबों और सेना के भारतीय अधिकारियों को पत्र लिखे गए। इस बीच नाना साहब ने अज़ीमुल्ला खां को साथ लेकर तीर्थयात्रा के बहाने सारे भारत का भ्रमण किया और दिल्ली के सम्राट् और सभी राजाओं से मिलकर उन सबको क्रांति के लिए तैयार कर लिया। स्थान-स्थान पर नानासाहब ने अंगरेज़ अधिकारियों से भी भेंट की, ताकि वे भ्रम में बने रहें।

चूंकि अंगरेज़ों ने भारतीय राजाओं की गोद लेने की प्रथा को ठुकरा दिया था, इससे सभी राजा बिगड़ गए।

सतारा का राजा शिवाजी का वंशज था। इस राजा के कोई सन्तान न थी। राजा की मृत्यु पर अंगरेज़ सरकार

ने उसके साथ किए वचनों को भंग कर, राज्य पर अधिकार कर लिया। इसी प्रकार नागपुर के राजा राघोजी भोंसले की मृत्यु ११ नवम्बर, सन् १८५३ को हुई। इसके भी कोई सन्तान न थी। इसकी विधवा रानी ने यशवन्तराव नामक एक सम्बन्धी बालक को गोद में ले लिया। परन्तु अंगरेज़ सरकार ने पिछली सन्धि को ठुकराकर २८ जनवरी, सन् १८५४ को यह राज्य भी छीन लिया और उसके परिवार को अपमानित कर, राजप्रासाद से धक्के देकर निकाल दिया। मध्यप्रांत के छोटे-से राज्य सम्बलपुर का राजा भी निःसन्तान मरा। सन् १८४९ में यह राज्य भी अंगरेजों ने छीन लिया। बुन्देलखण्ड में जैतपुर राज्य को भी इन्ही कारणों से अंगरेजों ने अपने अधिकार में कर लिया। तंजोर राज्य को भी इसी प्रकार हड़प किया गया। अवध के नवाब वाजिदअली शाह का राज्य भी अंगरेज़ों ने छलपूर्वक छीन लिया। इस प्रकार अंगरेज़ों के प्रतिदिन के अत्याचारों से तंग आकर भारतवासियों ने अंगरेज़ों के विरुद्ध क्रान्ति का निश्चय किया। सभी लोगों ने प्रतिज्ञाएं की कि अंगरेज़ों को भारत से निकालकर ही सांस लेंगे।

इसके साथ ही साथ अंगरेज़ों ने खुले रूप से भारतीय हिन्दू और मुसलमानों को ईसाई बनाने का पूरा यत्न किया था, इसलिए भारतीय जनता भी अंगरेज़ों के विरुद्ध हो रही थी। मुसलमान मौलवी कुरान, और हिन्दू ब्राह्मण गंगाजल हाथ में लेकर क्रान्ति का प्रचार करने को निकल पड़े। इन सब योजनाओं का केन्द्र बिठूर ही था। इस क्रान्ति को बढ़ावा देने के लिए लोगों ने भरपूर धन दिया। इस स्वतन्त्रता-संग्राम

में कहीं पर भी क्रान्तिकारी वीरों को धन की कमी नहीं हुई।

सभी क्रान्तियों की सफलता एक ध्येय, एक नेता और एक झण्डे पर ही निर्भर होती है। इसीलिए विचारपूर्वक यह निश्चय हुआ कि हमारा नेता दिल्ली का सम्राट बहादुरशाह, हमारा चिह्न हरा झण्डा और क्रान्ति का दिन ३१ मई, सन् १८५७ रहेगा। क्योंकि ३१ मई रविवार का दिन था, अंगरेज़ अधिकारी छुट्टी पर होंगे, उनसे राज्य छीनने में कोई कठिनाई न होगी। कमल का फूल और रोटी ये दो चिह्न लेकर भारत के गांव-गांव में प्रचार किया गया।

इस बीच अंगरेज़ों ने नये कारतूस चालू किए, जिनके बनाने में गाय और सूअर की चरबी का भी प्रयोग होता था और इन्हें दांत से काटकर खोलना पड़ता था। इससे हिन्दू और मुसलमान सभी सैनिक बिगड़ खड़े हुए। सबसे पहले बैरकपुर में कलकत्ते की भारतीय सेनाओं ने इन कारतूसों को प्रयोग करने से इन्कार कर दिया। १९ नम्बर पलटन बिगड़ खड़ी हुई। अंगरेज़ अधिकारियों ने उस सेना से हथियार रखवा लिए, परन्तु एक नवयुवक ब्राह्मण सैनिक मंगल पाण्डे का रक्त खौल उठा। उसने आज्ञा मानना तो दूर, बल्कि अपनी बन्दूक से सारजेण्ट मेजर ह्यूसन को मार डाला। अब लेफ्टिनेण्ट बाघ अपने घोड़े पर आगे बढ़ा। मंगल पाण्डे ने गोली चलाकर उसके घोड़े को घायल कर दिया, परन्तु वह बच गया। अंगरेज़ अधिकारी ने मंगल पाण्डे को बन्दी बनाने की आज्ञा दी, परन्तु कोई भारतीय सैनिक आगे न बढ़ा। यह देख मंगल पाण्डे ने स्वयं गोली चलाकर अपने को घायल कर दिया।

८ अप्रैल, सन् १८५७ को मंगल पांडे को फांसी की आज्ञा हुई। कोई भी मेहतर उसे फांसी देने को तैयार न हुआ। अन्त में कलकत्ते से चार आदमी बुलाए गए। फांसी देने से पहले उस ब्राह्मण नवयुवक से उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गई। वह उत्साह से भरकर बोला, "भाइयो! जीना है तो शान से जीना सीखो, कुत्तों की भांति अपमानित होकर जीने से मृत्यु लाख बार अच्छी है।" इन शब्दों के साथ वह वीर फ़ांसी के तख्ते पर चढ़ गया। यह भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का प्रथम बलिदान था। अब कलकत्ते के सभी भारतीय सैनिक गुप्त रूप से बदला लेने का विचार करने लगे, परन्तु यही निश्चय हुआ कि ३१ मई से पहले कुछ न किया जाए। इस बीच अंगरेजों ने संदेह में भारतीय टुकड़ी नम्बर ३४ के भारतीय सूबेदार को फांसी पर चढ़ा दिया।

यह समाचार बिजली की भांति सारे देश में फैल गया। सैनिकों में क्रोध की अग्नि भड़क उठी। उनसे ३१ मई तक न रुका गया। अप्रैल मास में ही अम्बाला, मेरठ और लखनऊ में अंगरेज़ों के मकान जला दिए गए। क्योंकि पुलिस भी स्वतंत्रता-संग्राम में सम्मिलित थी, इसलिए आग लगाने वालों का अंगरेज़ों को कुछ भी पता न चला।

६ मई, सन् १८५७ को मेरठ में सैनिकों को नये कारतूस दिए गए। उन्होंने कारतूसों को दातों से काटने से स्पष्ट इनकार कर दिया। जिन-जिन लोगों ने इन्कार किया था, ऐसे ८५ सैनिकों को दस-दस वर्ष की कठोर कैद का दण्ड दिया गया। अन्य भारतीय सैनिकों को डराने के लिए खुली भूमि

में उनकी सैनिक वर्दी उतरवाकर हाथों में हथकड़ियां और पांव में बेड़ियां पहनाई गईं। इस दृश्य से सभी भारतीय सैनिक उसी क्षण विद्रोह करने को तैयार हो गए परन्तु उनके नेताओं ने उन्हें ३१ मई तक शान्त रहने की अपील की।

उसी दिन सांयकाल के समय कई सैनिक नगर में घूमने निकले। स्थान-स्थान पर स्त्रियों ने उन्हें धिक्कारा "जाओ। डूब मरो, तुम्हारे भाई जेलों में सड़ें और तुम मज़े उड़ाओ।" यह शब्द सैनिकों के हृदय में तीर की भांति चुभ गए और उसी रात्रि सबने मिलकर निश्चय किया कि ३१ मई तक नहीं रुकेंगे। १० मई को ही क्रांति की पूरी तैयारी हो गई। अब क्या था, सैनिकों ने उसी क्षण जेलखाना तोड़ अपने साथियों को जा छुड़ाया और जहां जो भी अंगरेज़ मिला, उसे मार डाला। अंगरेज़ों ने भाग-भागकर अपने सेवकों के घरों में छुपकर जीवन-रक्षा की। उसी रात्रि तक मेरठ नगर को पूरी तरह स्वतन्त्र कर ये सभी सैनिक दिल्ली की ओर चल पड़े।

३१ मई को बनारस में क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ। ३ जून को राजकीय कोष का सात लाख रुपया आजमगढ़ से बनारस आ रहा था। १७ नम्बर सेना ने विद्रोह कर इस धन पर, जेलखानेपर, गोले-बारूद पर, कार्यालयों आदि पर अधिकार कर लिया। पुलिस ने क्रांतिकारियों का पूरा-पूरा साथ दिया।

५ जून को जौनपुर में क्रांति आरम्भ हुई। आजमगढ़ और फैजाबाद में भी अंग्रेज़ी राज्य समाप्त कर दिया गया और सब स्थानों पर हरा झंडा फहरा दिया गया। इसी प्रकार प्रयाग में भी ६ नम्बर सेना और घुड़सवार सेना ने विद्रोह कर

दिया। १ जुलाई को इन्दौर और ३ जुलाई को आगरा स्वतन्त्र हो गया। इसी तरह सारे देश में यह आग फैल गई।

अब आइए, कानपुर के पास बिठूर में नानासाहब के पास चलें। ४ जून, सन् १८५७ की आधी रात को कानपुर छावनी में क्रांति आरम्भ हुई। सूबेदार टीकासिंह सहस्त्रों घुड़सवार और पैदल सैनिकों के साथ मैदान में निकल पड़े। उन्होंने अंगरेज़ी भवनों को अग्निदेवता की भेंट कर और अंगरेज़ी झंडे को स्थान-स्थान से उतारकर हरा झंडा फहरा दिया। ५ जून को कोष और बारूदखाने पर भी क्रान्तिकारियों ने अधिकार कर लिया। इसी दिन नगर में बड़े धूमधाम से नानासाहब को राजा बनाकर उनका जलूस निकाला गया। नानासाहब के पास तोपों की भी कमी न थी।

५ जून से २५ जून तक क्रान्तिकारियों और अंगरेज़ों में किला हथियाने के लिए भयंकर युद्ध हुए। अन्त में २५ जून को अंगरेज़ों ने भूख-प्यास से तंग आकर किला नानासाहब को सौंप दिया। नगर की हिन्दू और मुसलमान देवियां घरों से निकल पड़ीं, वे गोला-बारूद को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने, सैनिकों को भोजन देने और किले के नीचे लड़ने वाले तोपचियों की सहायता करने का काम करने लगीं।

नानासाहब ने नगर का प्रबन्ध करने के लिए, सब नगरवासियों की राय से, हुलाससिंह को मुख्य जज नियत किया। दीवानी मुकदमों के लिए अज़ीमुल्ला खां, बाबासाहब और ज्वालाप्रसाद को नियुक्त किया। अपराध करने वालों को कठोर दण्ड दिए जाते थे। शीघ्र ही सारे नगर में शांति स्थापित

हो गई। जनता ने स्वराज्य प्राप्त कर सुख की सांस ली। २८ जून तक कानपुर के आसपास अंगरेजी राज्य के सब चिह्न मिट गए। इस दिन एक दरबार किया गया। पहले सम्राट बहादुरशाह के नाम १०१ तोपों की सलामी दी गई और बाद में २१ तोपों की सलामी नानासाहब को दी गई। एक लाख रुपया दरिद्रों में बांटा गया। १ जुलाई को बिठूर में नानासाहब अपने पिता पेशवा की राज्यगद्दी पर बैठा।

कानपुर की स्वतन्त्रता का समाचार पाकर अंगरेज अधिकारी बौखला उठे। जनरल नील कलकत्ता से चलकर इलाहाबाद पहुंचा। यह सेनापति बहुत बड़ी सेना लेकर आया था। इसने आते ही इलाहाबाद में वह अत्याचार ढाया, कि जिसकी याद आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इलाहाबाद में कुछ सेनाएं रख शेष सेनाओं के साथ मेजर रिनाल्ड को कानपुर विजय करने के लिए भेजा। मार्ग में जो भी ग्राम मिले उन्हें आग लगाती हुई यह सेना आगे बढ़ी। मार्ग में जो भी लोग मिले, उन्हें बड़ी निर्दयता से वहीं मार डाला गया।

अंगरेजी सेना के कानपुर की ओर बढ़ने का समाचार पाकर, नानासाहब ने टीकासिंह के अधीन कुछ सेना भेजी। फतहपुर के पास भीषण संग्राम हुआ। इसमें अंगरेजों की विजय हुई और १२ जुलाई को अंगरेजी सेना ने फतहपुर में प्रवेश किया। अंगरेजों ने इस नगर में आग लगाकर वहां के सभी नर-नारियों को जीवित ही जला दिया। इस बीच ईरान का विजयी सेनापति हेवेलाक भी अपनी सेनाओं सहित मेजर रिनाल्ड की सहायता को पहुंच गया। अब ये दोनों सेनाएं

कानपुर की ओर बढ़ीं। इधर से नानासाहब स्वयं सेना लेकर आगे बढ़ा। क्रांतिकारी सैनिकों की तोपों ने ऐसी भयंकर गोलाबारी की, कि आकाश धुएं से भर गया। हाथ को हाथ न सूझता था। युद्ध-विद्या में अत्यन्त चतुर और अनुभवी सेनापति हेवेलाक ने हाईलैंड के घुड़सवार सैनिकों को साथ ले अपने-अपने सिर झुकाकर आंधी की भांति घुसकर सीधा तोपखाने पर आक्रमण कर दिया। मृत्यु के साथ खेलते हुए इन हाईलैंड के सैनिकों ने एक-एक पग आगे बढ़ाते हुए तोपचियों को जा पकड़ा और उनकी विजय को धूल में मिला दिया। अब दोनों ओर की सेनाओं में आमने-सामने भयंकर युद्ध हुआ। चूंकि अंगरेजी सेना संख्या में भी बहुत बड़ी थी और सब प्रकार से उत्तम हथियारों से सुसज्जित थी, इसीलिए नानासाहब को हारकर पीछे हटना पड़ा। १७ जुलाई तक दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध होते रहे। अन्त में विजय की आशा से निराश हो नानासाहब बिठूर लौट आया और कानपुर में अंगरेज़ों का अधिकार हो गया। भारतीयों के झुंड के झुंड फांसी पर चढ़ाए गए।

१७ अगस्त को फिर एक बार चुपचाप पूरे बल से नानासाहब ने गंगा पार करके अंगरेज़ों पर आक्रमण कर दिया। इस बार अंगरेज़ों के छक्के छूट गए। नानासाहब विजय प्राप्त कर कालपी के पास जा पहुंचा। इस बीच दूरदर्शी नेता तात्याटोपे गुप्त रूप से ग्वालियर पहुंचा। वहां की सारी सेना और तोपखाने को अपनी ओर मिला लिया। इस भारी सेना को साथ ले तात्याटोपे भी कालपी पहुंच गया। इस समय कालपी में सेनापति नील की छावनी थी। तात्याटोपे और



नानासाहब ने मिलकर कालपी के गढ़ को घेर लिया। ऐसा घमासान युद्ध हुआ, कि चारों ओर रक्त की नदी बह निकली। अंगरेज़ सेनापति ने जब देखा कि हमारा इस युद्ध में विजय पाना असम्भव है तो उसने अपनी सारी सेना सहित, चुपचाप रात के अन्धेरे में, कालपी खाली कर दिया। भारतीय सेनाओं ने उनका पीछा कर उनमें से बहुतों को मार डाला और शेष भाग गए। गढ़ के भीतर की सब युद्ध-सामग्री पर क्रान्ति-कारियों का अधिकार हो गया।

कुछ दिन विश्राम कर नानासाहब और सेनापति तात्या कानपुर की ओर बढ़े। मार्ग में जनरल विनढम को परास्त करती हुई ये सेनाएं १ दिसम्बर को गंगा के तट पर जा पहुंची। छः दिन तक निरंतर युद्ध होता रहा। एक बार फिर कानपुर का आधा नगर क्रान्तिकारियों के हाथ आ गया। इस युद्ध में इतनी मार-काट हुई कि गंगा के तट से लेकर नगर तक रक्त की नदी बह निकली। परन्तु समय क्रान्तिकारियों के विरुद्ध था। ग्वालियर की सेना युद्ध-भूमि से भाग निकली। अन्त में क्रान्तिकारियों की हार हुई। नानासाहब नेपाल की पहाड़ियों में चले गए। उन्होंने सन्देश भेजकर नेपाल के राणा शमशेर जंगबहादुरको सहायता के लिए अपील की। परन्तु उसने सहा-यता देनी तो दूर, अंगरेज़ी सैनिकों को अपने राज्य में बुला क्रांतिकारियों को पकड़वाने का पूरा यत्न किया। बहुत प्रयत्न करने के बाद भी अंगरेज़ी सेना नानासाहब और उसके साथियों का पता न लगा सकी। इसके बाद नानासाहब और उसके साथियों का क्या हुआ, इसका आज तक कुछ पता ही न चला।

महारानी लक्ष्मीबाई

○ ○ ○ ○ ○

सन् १८१८ में अंगरेज़ों ने पेशवा राज्य को समाप्त कर बाजीराव पेशवा द्वितीय को आठ लाख रुपया वार्षिक पेन्शन और बिठूर की जागीर दी। तभी से पेशवा बिठूर आ गए और उनके छोटे भाई चिमाजी बनारस चले गए। इन्हीं चिमाजी के पास एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण मोरोपन्त जी पूजा-पाठ का कार्य करते थे और पचास रुपया मासिक वेतन पाते थे। यह सतारा नगर के पास बाई ग्राम के निवासी थे। इनकी धर्मपत्नी भागीरथीबाई एक सुघड़, रूपवती और आदर्श स्त्री थीं। कार्तिक वदी १४, सम्वत् १८९१ (१९ दिसम्बर, सन् १८३५) के शुभ दिन एक बालिका का जन्म हुआ, जिसका नाम मनूबाई रखा गया। यही देवी बाद में स्वतन्त्रता-संग्राम १८५७ में 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

कुछ समय बाद चिमाजी का स्वर्गवास हो गया और मोरोपन्त जी बाजीराव पेशवा के पास ही बिठूर में आकर रहने

लगे। अभी मनूबाई चार वर्ष की आयु की भी नहीं हुई थी, कि इसकी माता परलोक सिधार गई। अब पिता ने पुत्री पर अपना सारा स्नेह देकर उसका लालन-पालन करने लगे।

नानासाहब, इनके छोटे भाई रावसाहब, तात्याटोपे और मनूबाई का साथ-साथ बचपन बीता। नानासाहब के साथ-साथ सम्मानपूर्वक मनूबाई भी पढ़ती, तीर, तलवार, भाला चलाना सीखती, घुड़सवारी करती और मल्लयुद्ध भी सीखती। मनू कन्या होते हुए भी एक वीर और होनहार बालिका थी। यह बालिका निर्भय, साहसी और अत्यन्त बुद्धिमती थी।

बचपन की एक घटना है। मनूबाई ७ वर्ष की थी और नानासाहब १७ वर्ष के। एक बार ये घने जंगल में घुड़सवारी करते दूर निकल गए। बालिका ने नाना से कहा, "आओ घुड़-दौड़ करें। देखें, कौन जीतता है।" अब क्या था, दोनों घोड़े सरपट दौड़ पड़े। अचानक नानासाहब का सिर एक पेड़ से जा टकराया और वह बेसुध होकर भूमि पर गिर पड़ा। बालिका देखते ही झटपट अपने घोड़े से उतर पड़ी। उसने नाना को सहारा देकर अपने घोड़े पर बिठा लिया और आप उचककर पीछे बैठ गई। यह साहसी बालिका घोड़े को धीरे-धीरे चला-कर बस्ती में ले आई। बाजीराव पेशवा ने देखा, तो मनू के साहस की प्रशंसा किए बिना न रह सके।

दूसरे ही दिन नानासाहब हाथी पर चढ़कर घूमने निकले। आज नानासाहब मनू से रूठे हुए थे। मनू ने भी हाथी पर बैठने का हठ किया। बाजीराव जी ने भी कहा, "मनू को साथ लेकर जाओ।" परन्तु नानासाहब ने महावत को चलने का

संकेत कर दिया। हाथी चल पड़ा और बाजीराव भीतर चले गए। मनू ने अपने पिता का हाथ पकड़कर कहा, "पिताजी! हाथी लौटाइए, मैं भी चढ़ूंगी।" पिता ने पुत्री को प्यार से समझाया, "देखो! हाथी चला गया।" परन्तु उस बालिका ने बड़ा हठ किया। फिर दुखी होकर पिता बोले, "पुत्री! तुम्हारे भाग्य में हाथी कहां है। तुम्हें तो साधारण गृहस्थ का जीवन बिताना है।" इसपर बालिका तमककर बोली, "नहीं पिताजी, मेरे भाग्य में तो बीसियों हाथी हैं।" यह बालिका का सहज वचन सत्य हुआ और इसी वर्ष झांसी के महाराज गंगाधरराव के साथ इसका विवाह हो गया।

इन दिनों झांसी राज्य का प्रबन्ध अंगरेज़ ही करते थे, गंगाधरराव तो नाम-मात्र के राजा थे। विवाह होने पर अंगरेज़ सरकार ने राज्य का सब प्रबन्ध महाराजा गंगाधरराव को सौंप दिया। सन् १८४२ से सन् १८५३ तक महाराजा गंगाधरराव ने राज्य-प्रबन्ध इतनी योग्यता से निभाया कि जनता सब प्रकार से सन्तुष्ट हो गई। अंगरेज़ अधिकारियों ने, जो समय-समय पर झांसी गए, महाराजा के राज्य-प्रबन्ध की योग्यता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

झांसी पहुंचकर इस देवी का नाम महारानी लक्ष्मीबाई रखा गया। यहां पर भी यह वीरांगना जहां स्वयं मल्ल-युद्ध, घुड़सवारी, तीर, भाला, बन्दूक आदि सभी युद्ध कलाओं का अभ्यास करती थी, वहां अपनी सहेलियों, मन्त्रियों की स्त्रियों और अन्य मिलने-जुलने वाली स्त्रियों को भी ये सब विद्याएं सिखाती। राजा को ये सब बातें पसन्द न थीं, परन्तु उसने विरोध भी

नहीं किया। आगे चलकर महारानी के साथ-साथ इन्हीं देवियों ने स्वतन्त्रता-संग्राम के समय ऐसी वीरता दिखाई, कि वह सब इतिहास में सोने के अक्षरों में लिखा जाने योग्य है।

समय पाकर रानी के पुत्र हुआ, परन्तु यह शिशु तीन मास का होकर मर गया। राजा बहुत दुखी रहने लगे और रोगी हो गए। बहुत सोच-विचार के बाद दामोदरराव नामक बालक को गोद लिया गया और अंगरेज़ सरकार को सूचना दे दी गई। राजा लगभग दो वर्ष रोगी रहे और २१ नवम्बर, सन् १८५३ को चल बसे।

महाराजा की मृत्यु के दिन से ही महारानी ने राज्य-भार सम्भाला। यह वीरांगना गुणों की खान थी। आत्म-प्रशंसा को यह विष के समान समझती थी। इसने सभी मूल्यवान आभूषणों को उतारकर, और बढ़िया वस्त्रों को भी सम्भालकर रख दिया और अब श्वेत वस्त्रों में अपना जीवन बिताने लगी। मन्दिरों में जाकर पूजा-पाठ करने में तो इसे विशेष आनन्द आता था। कहते हैं कि विधवा होने के बाद तो वह अधिक से अधिक समय भगवान की भक्ति में रत रहती और बाहरी संसार को वह बिल्कुल भूल जाती।

महारानी राज्य-कार्यों को बड़ी सावधानी से करती। कहीं किसीके साथ अन्याय न हो जाए, इस बात पर वह बड़ा ध्यान देती थी। राज्य-दरबार में वह पुरुष-वेश में जातीं। कभी-कभी नगर में घूमकर लोगों के कष्टों का पता लगाती और उन्हें मिटाने का भरपूर यत्न करती।

जब किसी राज्य को हड़पना होता था, तो अंगरेज़ वहां

के राजा को प्रबन्ध में अयोग्य कहने लगते थे। और उसके चरित्र को दूषित बताने का झूठमूठ प्रचार करने लगते थे। इस नीति के अनुसार, उन्होंने लक्ष्मीबाई पर यह दोष लगाया कि उसे नशे का अभ्यास है और वह दूसरे लोगों के प्रभाव में है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहास-लेखक सर जान ने स्पष्ट लिखा है कि महारानी न तो बच्ची है और न ही उसे किसी नशे की लत है, अपितु वह एक गम्भीर स्त्री है।

अपनी कुटिल नीति को अपनाकर अंगरेज़ों ने १६ मार्च, सन् १८५४ के दिन महारानी पर दोष लगाकर उसका राज्य हड़प लिया और पांच सहस्र मासिक पेन्शन नियत कर दी। साथ ही साथ महारानी का निजी कोष भी अंगरेज़ों ने लूट-कर अपने अधिकार में कर लिया। महारानी को लिखकर भेज दिया कि जब दामोदरराव बड़ा होगा, यह सब सम्पत्ति उसे दे दी जाएगी। महारानी के निवास के लिए झांसी का दुर्ग उन्हें दे दिया गया।

ये दिन महारानी के लिए बड़ी कठिनाई के थे। आजकल आप नियम से प्रातःकाल चार बजे उठतीं और आठ बजे तक निरन्तर ईशोपासना में रत रहतीं और दिन में खुले स्थान में युद्ध-कलाओं का अभ्यास करतीं और अन्य महिलाओं को भी यह अभ्यास करातीं। महारानी लक्ष्मीबाई एक दयालु देवी थीं। दरिद्रों को शीत ऋतु में कम्बल और गरम कपड़े वह प्रायः बांटा करती थीं। वह किसीका दुख नहीं देख सकती थीं।

महारानी लक्ष्मीबाई ने भारत के गवर्नर-जनरल के पास प्रार्थना-पत्र भेजा, जिसका आशय इस प्रकार था—सन् १८१७

की सन्धि के अनुसार, अंगरेज़ों को झांसी राज्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार आपने जो राज्य छीनने का कार्य किया है, वह किसी प्रकार भी न्यायसंगत नहीं है। यदि आपने इसपर ध्यान न दिया, तो यह समझा जाएगा कि आपने झांसी के साथ घोर अन्याय किया है।

कुछ दिनों बाद अंगरेज़ों ने इस प्रार्थना-पत्र को अस्वीकार कर दिया, परन्तु महारानी की युक्तियों का कोई उत्तर न दिया।

इस बीच एक बार तात्याटोपे महारानी से मिलने आया। महारानी के पूछने पर तात्या ने बताया कि एक-एक भारतीय सैनिक स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत है। दरिद्र, धनी क्या, सभी लोग एक संकेत पर मर मिटने को तैयार हैं।

यह सुनते ही महारानी प्रसन्नता से उछल पड़ी और बोली, "अहा! वह कैसी सुन्दर वेला होगी जब मातृभूमि विदेशियों के चंगुल से मुक्त होगी और भारत स्वतन्त्र होकर संसार में अपना मस्तक ऊंचा कर सकेगा। वीर तात्या! यह सफलता तब तक नहीं मिलने की, जब तक देश का प्रत्येक बालक तन, मन, धन से विदेशियों को उखाड़ फेंकने के लिए यत्नशील न होगा।"

महारानी लक्ष्मीबाई के हृदय में देश-भक्ति कूट-कूटकर भरी हुई थी। मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए वह बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए उद्यत थी। जब सन् १८५७ में सारे देश में अंगरेज़ों के विरुद्ध विद्रोह की चिनगारियां भड़क उठीं

और दिल्ली, कानपुर आदि नगरों से अंगरेज़ों को खदेड़ दिया गया, तो झांसी कैसे पीछे रह सकती थी ! ४ जून, सन् १८५७ को हवलदार कालेखां और अन्य सैनिकों ने क्रान्ति कर युद्ध का सामान और बहुत-सा धन छीन लिया। यहां पर अंगरेज़ी सेना बिल्कुल नहीं थी। अंगरेज़ अधिकारी डर के मारे कांप उठे। उन्होंने महारानी से रक्षा की पुकार की। महारानी लक्ष्मीबाई ने उनके बाल-बच्चों को अपने यहां आश्रय दिया।

ये क्रान्तिकारी सैनिक सीधा महारानी के प्रासाद के नीचे पहुंचे, और महारानी के दर्शनों की इच्छा प्रकट की। ऊपर की खिड़की खुली और श्वेत वेश में महारानी ने दर्शन दिए। महारानी ने पूछा, "क्या चाहते हो ?" हवलदार कालेखां आगे बढ़कर बोला, "महारानी की जय हो, हम लोग दिल्ली जाना चाहते हैं, कुछ मार्ग-व्यय की और आवश्यकता होगी, इसीलिए आपकी सेवा में आए हैं।" महारानी ने गंभीर होकर कहा, "अंगरेज़ों ने मेरे पास छोड़ा ही क्या है, फिर भी लो यह कंठहार, इससे आपका काम चल जाएगा। परन्तु देखना, मार्ग में किसीको सताना नहीं।" सैनिकों ने महारानी की जय-जयकार से आकाश गुंजा दिया और महारानी को प्रणाम कर चल दिए।

समय की गम्भीरता को देख महारानी ने अंगरेज अधिकारियों की आज्ञा लेकर नगर और राज्य का प्रबन्ध किया। नगर के सभी धनी-मानी और प्रतिष्ठित लोगों ने महारानी का पूरा-पूरा हाथ बंटाया। लक्ष्मीबाई के योग्य हाथों में राज्य

की बागडोर आते ही झांसी और उसके आसपास के क्षेत्र में राम-राज्य-सा हो गया। उस समय झांसी राज्य की सीमा यमुना नदी के दक्षिण और विन्ध्याचल के उत्तर तक फैली हुई थी। आसपास के बहुत-से सैनिक आ-आकर भरती होने लगे। ५०० पठान सैनिक भूखे-प्यासे महारानी के चरणों में आ पड़े। महारानी ने उन सबको भोजन-वस्त्र देकर अपनी सेना में मिला लिया।

झांसी के आसपास इन दिनों सागरसिंह के डाकों की धूम थी। आजकल वर्षा के दिन थे। कोई बाहर निकलने का साहस न करता था। वीरता और साहस की मूर्ति महारानी ने अपनी सहचरियों और कुछ घुड़सवार सैनिकों को साथ लेकर सागरसिंह को उसके डेरे पर ही पकड़ने का निश्चय किया। प्रातःकाल होते ही महारानी का दल पुरुष वेश में सज-धज कर घोड़ों पर सवार हो, सागरसिंह की खोज में चल पड़ा। मार्ग में बेतवा नदी ठाठें मार रही थी। नाववाला पार जाने का साहस नहीं कर रहा था। महारानी ने आव देखा न ताव, अपने घोड़े को नदी में डाल ही दिया। महारानी के पीछे-पीछे उसके साथी भी घोड़ों सहित नदी में कूद पड़े। देखते ही देखते यह दल नदी की थपेड़ों से लड़ता-लड़ता दूसरे किनारे लग गया। सांझ से पहले-पहले महारानी बरवा सागर पहुंच गई।

उस समय डाकू सागरसिंह खिसनी के घने जंगलों में रंग-रेलियां मना रहा था। एकाएक महारानी ने उसे जा घेरा, केवल २५ घुड़सवारों के साथ। पहले तो डाकू घबरा गए। फिर गोलियों की बौछार शुरू हुई। सागरसिंह के साथी तो

भाग गए, परन्तु वह न भाग सका। महारानी ने स्वयं आगे बढ़कर वह वीरता दिखाई कि सागरसिंह को आत्मसमर्पण करना पड़ा। जो काम बड़े-बड़े शूर-वीरों से न हुआ, वह एक स्त्री ने कर दिखाया। सागरसिंह को बांधकर बरवा सागर लाया गया। अगले दिन बरवा सागर में उसका न्याय होना था। प्रातःकाल होते ही वह महारानी के सामने लाया गया।

महारानी ने पूछा, "जानते हो, डाकू के लिए मृत्यु से कम दंड नहीं है ? फिर तुमने ऐसा घृणित धन्धा क्यों ग्रहण किया ?"

सागरसिंह गम्भीरता से किन्तु विनम्रतापूर्वक बोला, "सरकार, आप जो चाहें मुझे दण्ड दें, परन्तु मुझे तोप के आगे रखकर न उड़ाएं अन्यथा मेरी जाति का अपमान होगा, और इसपर मेरी जात-बिरादरी वाले बदला लेंगे।"

महारानी ने सोचकर कहा, "यदि तुम्हें छोड़ दिया जाए तो क्या करोगे ?"

सागरसिंह—किसी दूसरे राज्य में जाकर डाका डालूंगा।

महारानी—क्या तुम यह धन्धा छोड़ भी सकते हो ?

सागरसिंह—हां सरकार, यदि मुझे और मेरे साथियों को सेना में अच्छे काम पर लगाया जाए।

महारानी लक्ष्मीबाई ने उससे प्रतिज्ञा करवाकर उसे छोड़ दिया और आज्ञा दी, "जाओ, शीघ्र ही अपने साथियों को लेकर आओ।"

सागरसिंह का मुंह खुले का खुला रह गया। एक डाकू और इतना विश्वास ! उसकी आंखों से आंसू ढुलक पड़े।

कुछ ही दिनों में वह अपने साथियों सहित महारानी के चरणों में आ गिरा और सैनिक बन गया। योग्य महारानी ने इस प्रकार इन डाकुओं का हृदय-परिवर्तन कर उन्हें देशभक्त बना दिया। आगे चलकर झांसी के युद्ध में इन वीरों ने वह हाथ दिखलाए कि अंगरेज शत्रुओं ने भी उनकी वीरता का यशोगान किया। महारानी कुछ दिन बरवा सागर ठहरकर झांसी लौट आईं।

अब इस समय राज्य में सैनिक तैयारी के साथ-साथ गोला-बारूद और तोपें भी बनने लगीं। हर प्रकार से झांसी की रक्षा का प्रबन्ध किया जाने लगा। महारानी ने राज्य की बागडोर स्थानीय अंगरेज अधिकारियों की आज्ञा से ही संभाली थी, जिसकी सूचना गवर्नर-जनरल के पास भी पहुंच चुकी थी। इसपर भी अंगरेज महारानी को अपना शत्रु मानते थे, इसका कारण शायद यह हो कि नानासाहब और तात्याटोपे महारानी के बचपन के साथी थे।

कुछ भी हो, ६ जनवरी, सन् १८५८ को जनरल सर रोज़ अपनी विशाल सेना लेकर झांसी की ओर चल पड़ा। महारानी और उसके दरबारी उनकी नीयतों से खूब परिचित थे। इसलिए झांसी के चारों ओर दूर-दूर तक के गांव खाली करा लिए गए, ताकि अंगरेजों को किसी भी प्रकार की सहायता न मिल सके। मार्ग में सब खेती और छायादार वृक्ष गिरा दिए गए। परन्तु देशद्रोही महाराजा सिंधिया ने अंगरेजी सेना के लिए भोजन-सामग्री और घोड़ों के लिए घास आदि का उत्तम प्रबन्ध कर लिया।

मार्ग में ग्रामीण जनता का विनाश करती हुई अंगरेज़ी सेना २० मार्च को झांसी के पास पहुंच गई। जनरल सर रोज़ ने महारानी को दूत द्वारा सूचना दी, कि या तो खाली हाथ हमारे शिविर में आ जाओ या युद्ध करो। महारानी और उसके मन्त्रियों ने इसे अपमान समझा और युद्ध की घोषणा कर दी। नगर के चारों ओर दीवारों पर तोपें गाड़ दी गईं, जिनकी संख्या ५१ थी। संकेत होते ही तोपों ने आग उगलना प्रारम्भ कर दिया। गढ़ के भीतर बुन्देलखण्डी सैनिक, पठान सैनिक और स्त्री-सैनिक कुल मिलाकर चार सहस्र से कम न होंगे।

२४ मार्च के प्रातःकाल को झांसी दुर्ग की दीवार से 'घनगर्ज' नामक तोप ने भयंकर गोलाबारी की। २५ मार्च से तो भीषण युद्ध शुरू हो गया। दुर्ग के ऊपर से तीस-तीस सेर तक के गोले बरसाए गए। २६ मार्च को सायंकाल होते-होते दुर्ग के पश्चिम द्वार के तोपची गुलाम गौसखां ने ऐसे अचूक निशाने मारे कि अंगरेज़ी सेना की कई बढ़िया तोपें बेकार हो गईं और कई तोपची भी मारे गए। महारानी ने वीर गुलाम गौसखां को सोने का कड़ा इनाम दिया। उस दिन अंगरेज़ों में खलबली मच गई और असंख्य लोग मारे गए। नगर के भीतर दिन में प्रायः पुरुष तोपची का कार्य करते थे और रात में स्त्रियां तोपें सम्भालती थीं।

अब अंगरेज़ों ने सावधानी के साथ जार पहाड़ी पर मोर्चे लगाए। उन्होंने प्रातःकाल होते-होते नगर पर ऐसी भयंकर गोलाबारी की, कि नगरवासी अनगिनत संख्या में मरने लगे।

साथ ही साथ पश्चिमी दीवार में स्थान-स्थान पर छिद्र हो गए। देखते-देखते दीवार टूट गई।

कहीं शत्रु-सैनिक नगर में घुस आए, तो अनर्थ हो जाएगा। यह सोच वीर सागरसिंह सौ सैनिकों को ले, आगे बढ़ने वाली शत्रु-सेना पर टूट पड़ा। तलवारों से तलवारें टकराने लगीं। शत्रु की सेना के उस भाग को नष्टकर वीर सागरसिंह भी सदा के लिए सो गया। जो कल डाकू था, आज वह स्वतन्त्रता-सेनानी की तरह अपने देश के लिए शहीद हो गया।

रात होने पर कारीगरों ने काले कम्बल ओढ़-ओढ़कर नई दीवार खड़ी कर दी और नगर को सुरक्षित कर लिया। प्रातः-काल होते ही अद्‌भुत वीर तोपची गुलाम गौसखां ने इस मोर्चे को सम्भाल, ऐसे अचूक निशाने मारे कि शत्रु की कई तोपें लुढ़कती नज़र आईं।

आठ दिन तक घनघोर युद्ध होता रहा। झांसी की छोटी-सी सेना कब तक लड़ती? अंगरेज़ों ने दूरबीनों के द्वारा नगर के पानी के स्रोतों को देख लिया। अब क्या था, वे शंकर किले की ओर बढ़े और ऐसी भयंकर गोलाबारी की कि पानी भरने वाले बहुत-से स्त्री-पुरुष मारे गए। नगर में चार घंटे तक किसीको जल की एक बूंद भी न मिली। पश्चिम और दक्षिण द्वार के तोपचियों ने अपनी तोपों के मुंह शंकर किले की ओर कर लिए। एक बार फिर अंगरेज़ तोपची घबराकर पीछे हट गए।

इस बीच कालपी से तात्याटोपे महारानी की सहायता के लिए चल पड़ा। अंगरेज़ सेनापति ने अपनी मुख्य सेना को

तात्या का मार्ग रोकने के लिए भेज दिया। अंगरेज़ी सेना ने इतनी तीव्र गति से तात्या की सेना पर आक्रमण किया कि तात्या के सैनिक घबराकर भाग खड़े हुए। तात्या से कुछ भी करते न बना और वह कालपी लौट आया। तात्या की हार का समाचार झांसी में पहुंचा तो महारानी विजय की आशा छोड़ बैठी। आज इधर अंगरेज़ों ने पूरे दल-बल के साथ दुर्ग को चारों ओर से घेरना शुरू किया। आज के युद्ध में वीर तोपची गुलाम गौसखां, खुदाबख्श, लालता और कई तोपची स्त्रियों ने लड़ते-लड़ते अपने प्राण दे दिए फिर भी तोपों से गोलाबारी होती ही रही। अब अंगरेज़ सीढ़ियां लेकर दीवार पर चढ़ने लगे। जो भी दीवार पर चढ़ पाता, वहीं ढेर हो जाता। कई सीढ़ियां टूटकर गिर गईं।

देश द्रोहियों की यहां भी कमी न थी। दुल्हाजू और पीर अली शत्रु से मिले हुए थे। दुल्हाजू तोपची ने आगे बढ़कर ओड़फा फाटक का कुण्डा लोहे की छड़ से तोड़कर खोल दिया। उसकी साथिन तोपची स्त्री सुन्दर ने यह देखा तो नंगी तलवार लेकर उसपर झपटी और बोली, "पापी ठाकुर! देश-द्रोही कुत्ते! तू भी मर।" दुर्भाग्य से उसकी तलवार का वार लोहे की छड़ पर पड़ा और वह बाल-बाल बच गया। इतने में अंगरेज़ सैनिक नगर में घुस आए और वह वीर देवी सुन्दर शत्रु से लड़ती-लड़ती युद्ध में मारी गई।

यह देखते ही महारानी अपने वीर साथियों सहित दुर्ग से निकल शत्रु-सेना पर टूट पड़ी। आमने-सामने भयंकर युद्ध हुआ, तलवारों से तलवारें भिड़ गईं और शत्रु-सैनिक गाजर-

मूली की तरह कट-कटकर गिरने लगे। उसी समय वृद्ध नाना-भोपटकर भपटकर महारानी के आगे आ खड़ा हुआ और दोनों हाथ जोड़कर बोला, "आप पीछे हटकर दुर्ग में लौट चलिए। आपके मारे जाने से स्वतन्त्रता-संग्राम धरा-धराया रह जाएगा और कुछ भी न बन सकेगा।" महारानी मान गईं और गढ़ में लौट आईं। अब तक लगभग सभी बुंदेलखण्डी सैनिक मारे जा चुके थे और केवल ढ़ाई सौ पठान सैनिक ही बचे थे। उन्हें गढ़ के भीतर लेकर गढ़ के द्वार बन्द कर दिए गए।

अब नगर के भीतर बचे-खुचे बुन्देलखंडी सैनिकों ने युद्ध शुरू किया। एक-एक घर, एक-एक इंच भूमि पर युद्ध लड़ा गया। अन्त में राजमहल में युद्ध लड़ा गया। शाही घुड़साल में ५० सैनिक छिपे बैठे थे। वे गढ़ तक नहीं पहुंच पाए। इन वीरों ने शत्रु सेना को एक पग भी नहीं बढ़ने दिया, जब तक कि उनके अन्तिम सैनिक के हाथ में तलवार रही। इस प्रकार एक-एक कर सभी वीर युद्ध में मारे गए और अंगरेज़ी सेना ने नगर पर अधिकार कर लिया। ५ वर्ष की आयु के बालकों से लेकर ८० वर्ष की आयु तक के वृद्धों को मौत के घाट उतार दिया गया। स्त्रियों ने कुओं में कूद-कूदकर अपने सती धर्म की रक्षा की। अंगरेजों ने नगर-भर में आग लगा दी। अब झांसी की लूट-मार शुरू हुई। राजमहल और पुस्तकालय जलाकर राख कर दिया गया। एक-एक अमूल्य-दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थ वीरता की डींग मारने वाले अंगरेजों ने मिट्टी में मिला दिया। महारानी ने हृदय पर पत्थर रखकर अपनी झांसी का विनाश अपनी आंखों से देखा। नगरवासियों की दुर्दशा को देख उसकी

ग्रांखों ने सावन-भादों की तरह जल बरसाया। परन्तु वह कर ही क्या सकती थी, विधाता विपरीत था।

गढ़ के भीतर सायंकल होते-होते सभा जुड़ी और विचार किया गया कि आगे क्या करना होगा। महारानी झांसी में ही प्राणों की बलि देना चाहती थी परन्तु मन्त्रियों की राय से यही निश्चय हुआ कि यहां से चलकर कालपी पहुंचा जाए और स्वतन्त्रता-संग्राम चालू रखा जाए। उसी रात महारानी लक्ष्मीबाई वीर पठानों और अन्य मन्त्रियों को साथ ले झांसी को सदा के लिए छोड़कर चल दी। यह टोली भांडेरी द्वार की ओर बढ़ी और कोतवाली तक पहुंचते-पहुंचते अंगरेज़ों से टक्कर हो गई। भयंकर मार-काट करते हुए ये लोग आगे बढ़ गए और बड़ी तेज़ी के साथ द्वार के पास जा पहुंचे।

महारानी की सुरक्षा के लिए वीर भाऊ बख्शी कोरी-सैनिकों को साथ लेकर पहले ही छुपे-छुपे द्वार के पास पहुंच चुका था। इसने आगे बढ़ पहरेदार शत्रु सैनिकों को काटकर गिरा दिया और द्वार का कुंडा खोल दिया। इस प्रकार महा-रानी और उसके साथियों के लिए मार्ग बन गया। यह वीर बख्शी अपने दल-सहित शत्रुओं से संग्राम करता हुआ वीर-गति को प्राप्त हुआ।

समाचार पाते ही जनरल रोज़ ने लेफ्टिनेंट बॉकर को महा-रानी का पीछा करने भेजा। प्रातःकाल होते ही भांडेरी द्वार के नीचे बहने वाली पहूज नदी पर महारानी के सैनिकों ने मुंह-हाथ धोया ही था कि शत्रु सेना पहुंच गई। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, वीर पठान सैनिकों ने शत्रु के छक्के छुड़ा दिए।

लेफ्टिनेंट बॉकर घायल हो गया और हारकर युद्धभूमि से भाग गया। उधर महारानी का घोड़ा भी घायल हो चुका था। बिना रुके यह वीर टोली भूखी-प्यासी निरन्तर चलती हुई आधी रात तक कालपी पहुंच गई। कालपी झांसी से १०२ मील दूर है। यहां पहुंच महारानी का प्रिय घोड़ा मर गया।

रावसाहब, तात्याटोपे, बांदा का नवाब और बानापुर का राजा और कई राजा यहां एकत्रित थे। महारानी लक्ष्मीबाई ने बहुतेरा प्रयत्न किया कि वे सभी लोग एक सूत्र में बंधकर, शक्तिशाली अंगरेज़ी सेना से मिलकर युद्ध करें, परन्तु कुछ भी निश्चय न हो सका। महारानी लक्ष्मीबाई स्त्री थी, तात्याटोपे एक साधारण परिवार का था, अन्य राजा किसीके अधीन नहीं होना चाहते थे। इतने में शत्रु सिर पर आन पहुंचा। कालपी से ४२ मील दूर कचगांव में फिर एक बार महारानी लक्ष्मीबाई ने जनरल रोज़ की सेनाओं से टक्कर ली। अन्य किसी राजा ने महारानी का साथ न दिया। जहां आपस में ही एकता न हो, वहां क्या बन सकता था! तिस-पर भी महारानी ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। परन्तु समय विपरीत देख, महारानी कालपी लौट आई। कालपी के मैदान में फिर एक बार महारानी लक्ष्मीबाई ने जनरल रोज़ से युद्ध किया। इस युद्ध में वीर महारानी ने वह हाथ दिखाए कि एक बार तो अंगरेज़ तोपची तोपें छोड़-छोड़कर भाग खड़े हुए, और अंगरेज़ी सेना को पीछे हटना पड़ा। यह देख जनरल रोज़ ने स्वयं बाईं ओर से महारानी की सेना पर पूरे बल से आक्रमण किया। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित इतनी बड़ी अंगरेज़ी

सेना का अकेली महारानी कब तक सामना करती। रावसाहब और तात्याटोपे को छोड़, अन्य राजा तो कभी के कालपी छोड़कर भाग चुके थे। अन्त में २४ मई को बहुत-सी युद्ध-सामग्री छोड़ महारानी लक्ष्मीबाई, रावसाहब और तात्याटोपे ने भी विजय की आशा त्यागकर कालपी छोड़ दिया। इसी दिन अंगरेज़ी सेना ने कालपी पर अधिकार कर लिया।

कालपी छोड़ने के बाद गोपालपुर में महारानी लक्ष्मीबाई, रावसाहब, बांदा नवाब और तात्याटोपे फिर इकट्ठे हुए। बहुत सोच-विचार के बाद यह निश्चय हुआ कि ग्वालियर का किला सबसे दृढ़ और सुरक्षित किला है, अतः उसे ही अपना केन्द्र बनाया जाए। अब ये सभी क्रान्तिकारी नेता ग्वालियर की ओर बढ़े और २८ मई को ग्वालियर के पास पहुंच गए। ग्वालियर के महाराजा जयाजीराव सिंधिया को सन्देश भेजा गया कि आओ मिलकर अंगरेज़ों को देश से निकाल बाहर करें और भारत माता को स्वतन्त्र कराएं। महाराजा जयाजी-राव सिंधिया ने यह समाचार पा उनकी सहायता करनी तो दूर, उल्टे १ जून को सेना लेकर उनपर चढ़ाई कर दी। इस बीच दूरदर्शी तात्याटोपे गुप्त रूप से ग्वालियर की सेना में पहुंच गया और उन्हें स्वतन्त्रता-संग्राम की सब बातें समझाकर अपनी ओर मिला लिया। ग्वालियर के सैनिक ज्योंही क्रांति-कारियों की सेना के सामने आए, उन्होंने आगे बढ़ क्रान्ति-कारियों को गले लगाया। साथ ही साथ 'स्वतन्त्रता-संग्राम की जय हो', 'महारानी लक्ष्मीबाई की जय हो,!' 'तात्याटोपे की जय हो'—इन नारों से आकाश गुंज दिया। यह देख महा-

राज ग्वालियर अपने मन्त्री सहित आगरे की ओर भाग गया। स्वतन्त्रता-संग्राम के वीर सेनानी ज्योंही ग्वालियर नगर में पहुंचे, वहां की प्रजा ने उनका भरपूर स्वागत किया। बिना किसी बाधा के राज्य-कोष और सब तोपों आदि पर अधिकार कर लिया गया। ३ जून को फूलबाग में दरबार हुआ और रावसाहब को पेशवा मान लिया गया। तात्याटोपे प्रधान सेनापति बनाया गया। तोपों की गड़गड़ाहट के साथ यह समारोह समाप्त हुआ।

अब महारानी लक्ष्मीबाई ने सबको समझाया कि अंगरेज़ी सेना के आने से पहले पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए, ताकि आगे की भांति हार का मुंह न देखना पड़े। परन्तु वहां तो दिन-रात भांग और शराब के नशे में रंगरेलियां मनाई जा रही थीं। कौन एक स्त्री की सुनता। महारानी मन मारकर रह गईं। फिर भी यह वीर देवी ग्वालियर के आसपास के क्षेत्र में जा-जाकर युद्ध के मोर्चों की स्थिति पर विचार करती रहतीं और अपना अधिक समय पूजा-पाठ में बितातीं। एक बार वह अपनी सहचरियों—मुन्दर, काशी और जूही को साथ लेकर गढ़ के दक्षिणी ओर बाबा गंगादास की कुटिया पर पहुंचीं। महारानी लक्ष्मीबाई ने उस शान्तचित्त महात्मा से बड़ी नम्रता से कुछ पूछना चाहा। महात्मा ने हंसते हुए कहा, "पुत्री! तू जो कुछ पूछना चाहती है, प्रसन्नता से पूछ।"

महारानी लक्ष्मीबाई बोलीं, "भगवन्! हमारे देश का कब उद्धार होगा?"

महात्मा बोले, "बेटी! जानती हो, भवन कैसे बनते हैं?

एक के ऊपर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी इस प्रकार अनगिनत ईंटें जब एक होकर मिलती हैं, तभी सुन्दर और सुदृढ़ भवन खड़ा हो जाता है। इसी प्रकार जब तक यह देशवासी संगठित होकर माला के मनकों की तरह एक सूत्र में नहीं पिरोये जाते, देश का स्वाधीन होना कठिन है। जब तक भारतवासी ऊंच-नीच, छोटे-बड़े का भेद मिटाकर स्वार्थ की दलदल से ऊपर उठकर, आपसी वैर-विरोध को भुलाकर एक नहीं होते, देश का कल्याण असम्भव है।"

यह शब्द कहकर महात्मा मौन हो गए और महारानी को चले जाने का संकेत किया। महारानी भी नमस्कार कर अपने स्थान पर लौट आईं।

इधर जनरल रोज़, ब्रिगेडियर स्मिथ और ब्रिगेडियर स्टुअर्ट बहुत बड़ी सेना लेकर १६ जून को बहादुरपुर ग्राम में आ पहुंचे। इस बीच जनरल रोज़ ने आगरे से महाराजा जयाजीराव सिंधिया को बुला लिया। मुरार नामक स्थान पर अंगरेज़ी सेनाओं और पेशवा की सेनाओं में युद्ध छिड़ गया। दो घण्टे के युद्ध में ही अंगरेज़ी सेना ने मुरार पर अधिकार कर लिया। बचे-खुचे सैनिक जब भागकर ग्वालियर पहुंचे, तो रावसाहब की आंखें खुलीं। उसने सेनापति तात्या को महारानी की सेवा में भेजा। महारानी ने पूछा, "क्या बात है, भांग समाप्त हो गई क्या ?"

सेनापति तात्या ने बड़े नम्र शब्दों में कहा, "महारानी जी, अब इन बातों का समय नहीं रह गया है, मुरार पर अंगरेज़ों का अधिकार हो गया है, कृपया हमारी भूलों को

क्षमा कीजिए और हमें उचित राय दीजिए।"

महारानी लक्ष्मीबाई कहती गईं, "नहीं, नहीं, अभी राग-रंग की एक-दो और सभाएं जुड़ने दो, फिर देखा जाएगा।"

जनरल तात्याटोपे ने महारानी के चरणों में गिरकर क्षमा-याचना करते हुए प्रतिज्ञा की कि मैं आपकी हर आज्ञा का पालन करूंगा।

महारानी लक्ष्मीबाई की आंखों में अश्रु भर आए। वे बोलीं, "वीर तात्या, तैयारी का तो समय हाथ से निकल चुका है, अब जो हो, धैर्य धारण करो। मेरी एक बात याद रखना। शत्रु बड़ा प्रबल है। उसे भुलावे में रखकर दक्षिण दिशा की ओर बढ़ते हुए अपनी जन्म भूमि महाराष्ट्र प्रान्त में जाकर सैन्य-संगठन करके ही शत्रु से लोहा लेना। इन बातों में तुम आगे ही बहुत निपुण हो। मेरा तो शायद यह अन्तिम युद्ध हो।"

तात्या ने महारानी की आज्ञा को सिर-आंखों पर लिया और तोपों को नगर की दीवार पर से गोलाबारी करने के लिए तैयार रहने का आदेश दिया।

१७ जून को प्रातःकाल युद्ध शुरू हुआ। नगर की पूर्वी ओर का मोर्चा महारानी ने स्वयं सम्भाला। अंगरेजों ने घोषणा कर दी कि हम लोग तो महाराजा जयाजीराव को उसका राज्य लौटाने आए हैं, हमें ग्वालियर से कुछ लेना-देना नहीं। इस घोषणा का परिणाम यह हुआ कि ग्वालियर के सैनिक युद्ध तो करते रहे, परन्तु अनमनेपन से। महारानी की तोपों ने ऐसी मार मारी कि शत्रु सेना को पीछे हटना पड़ा। इस दिन महारानी के पठान सैनिकों ने वह वीरता दिखाई कि अंगरेजी

सेना से कुछ भी न करते बना। इस दिन अंगरेज़ी सेना के बहुत अधिक सैनिक मारे गए और मैदान महारानी के ही हाथ रहा।

१८ जून के प्रातःकाल युद्ध आरम्भ हुआ। आज जनरल रोज़ स्वयं महारानी से युद्ध करने के लिए सामने आया। महारानी ने भी घुड़साल से उत्तम घोड़ा मंगवाकर अपनी सहचरियों और पठान सैनिकों को साथ ले, तैयार हो गई। चलने से पहले महारानी ने अपने पुत्र दामोदरराव को रामचन्द्र देशमुख को सौंपकर कहा, "आज इस बालक की रक्षा का भार तुमपर है, इसे अपनी पीठ पर बांधकर ले चलो। दूसरी बात यह है कि मेरे शरीर को शत्रु न छू पाएं, इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना है।" पठान सैनिकों और रघुनाथसिंह जी ने तलवार उठाकर वैसी प्रतिज्ञा की। तब रानी को सन्तोष हुआ।

इस बीच अंगरेज़ों ने गोलियों की बौछार प्रारम्भ कर दी, और जवाब में महारानी के तोपचियों ने भी आग बरसानी शुरू कर दी। महारानी की सहचरी जूही बड़ी निर्भयता से शत्रुसेना पर गोले बरसा रही थी। यह वीर देवी यहीं लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुई। इतने में समाचार मिला कि ग्वालियर की सेना अपने महाराजा से जा मिली है और नगर के दो मार्गों पर शत्रुओं का अधिकार हो गया है। परन्तु महारानी के साथ जो पैदल सेना थी, उसने हिम्मत न हारी। वह महारानी के लिए मर-मिटने को तैयार थी।

तोपों के गोलों की परवाह न करते हुए अंगरेज़ों की सेना

दो ओर से महारानी के मोर्चे पर झपट पड़ी। इतने में ग्वालियर की पैदल सेना घबराकर भाग खड़ी हुई। अब तो महारानी की रक्षा करने के लिए पठान सैनिकों ने बड़ा भयंकर युद्ध किया। और कोई चारा न देखकर महारानी ने सेनापति तात्या की सेना से मिलने का यत्न किया। परन्तु इन दोनों स्थानों के बीच अंगरेजी सेना का जाल बिछा हुआ था। इस समय पठान सैनिकों का युद्ध देखने योग्य था। उनकी शूरवीरता अनुपम थी। इस समय महारानी ने घोड़े की लगाम दांतों में दबा दोनों हाथों से वह तलवार चलाई कि शत्रु-सैनिकों में भगदड़ मच गई। चारों ओर रक्त, और शव ही शव दिखाई देते थे।

महारानी बढ़ती-बढ़ती सोनरेखा नाले पर पहुंच गई। इसे पार करने पर महात्मा गंगादास की कुटिया थी। परन्तु यहां पर महारानी का घोड़ा अड़ गया। महारानी ने बार-बार नाला पार करने का यत्न किया, पर घोड़ा अपने स्थान से टस से मस न हुआ। इस बीच कई अंगरेज सैनिक आ पहुंचे और लगे महारानी पर चारों ओर से वार करने। परन्तु महारानी के उस वीर दल ने ऐसा भयंकर युद्ध किया कि शत्रु के सैनिक कट-कटकर गिरने लगे। साथ ही साथ महारानी के दोनों हाथों की तलवारों ने वह मार मारी कि जो भी सामने आता, वहीं ढेर हो जाता।

अन्तिम पठान वीर गुल मुहम्मद और केवल चार सरदार बचे। पीछे से १५-२० और अंगरेज सवार आ पहुंचे। महारानी की सहचरी मुन्दर मारी गई। उसका शव रघुनाथ



सिंह जी ने अपने घोड़े पर लाद लिया। इस बीच महारानी के शरीर पर कई घाव हो गए थे। लड़ते-लड़ते अन्त में पांच अंगरेज़ सैनिक बच रहे, शेष सब मारे गए। एक अंगरेज़ सैनिक ने आगे बढ़कर महारानी की जांघ पर तलवार चला दी। महारानी रक्त से लथपथ हो गई। यह देख गुल मुहम्मद आंधी की गति से भागकर आया, परन्तु उसके पहुंचने से पहले ही दूसरे अंगरेज़ ने महारानी के सिर पर आक्रमण कर दिया। महारानी के सिर का एक भाग और एक आंख कटकर गिर पड़ी। इतना होने पर भी वीर महारानी ने अपनी तलवार से उस अंगरेज़ सैनिक का कन्धा काट डाला। वीर गुल मुहम्मद ने पहुंचते ही उन अंगरेज़ सवारों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए, जो बचे, सो भाग खड़े हुए। अब वहां कोई शत्रु न था। महारानी की यह दशा देख गुल मुहम्मद रो पड़ा। इतनी देर में रामचन्द्र देशमुख और रघुनाथसिंह भी आ पहुंचे। इन्होंने महारानी के शरीर को अपने घोड़ों पर रख, धीरे-धीरे महात्मा गंगादास की कुटिया पर पहुंचा दिया।

महारानी और उसकी सहचरी मुन्दर के शरीर को एक स्वच्छ भूमि पर लिटाया गया। इस बीच महरानी लक्ष्मीबाई को थोड़ी-सी चेतना हुई और उनके मुख से 'ओंकार' शब्द की धीमी-सी ध्वनि हुई और वह शरीर ठंडा हो गया।

'मेरे शरीर को शत्रु न छूने पाएं' ये शब्द सबके कानों में गूंज रहे थे। कहीं शत्रु-सैनिक फिर न आ धमकें यह सोच, महारानी का अन्तिम संस्कार करने के लिए शीघ्रता की गई। लकड़ियां आएं तो कहां से। महात्मा गंगादास की आज्ञा पर

उनकी कुटिया को झटपट तोड़ दिया गया और देखते ही देखते लकड़ियों का ढेर लग गया। शीघ्र ही चिता सजाई गई। महारानी और उसकी सहचरी मुन्दर के शरीर वेदमन्त्रों की पवित्र ध्वनि के साथ-साथ अग्नि देवता की भेंट कर दिए गए।

इतनी देर में फिर कुछ शत्रु-सैनिक सिर पर आ पहुंचे। रघुनाथसिंह जी ने देशमुख जी को कहा, "आप दामोदरराव को लेकर यहां से चले जाइए और महारानी के सुपुत्र की रक्षा कीजिए। मैं इनसे निपटता हूं।"

रघुनाथसिंह और गुल मुहम्मद ने अपनी बन्दूकें सम्भाल पेड़ों की आड़ में खड़े होकर शत्रु-सैनिकों पर गोलियां बरसानी शुरू कर दीं। दिन-भर के थके-मांदे इन दोनों वीरों ने ऐसी सावधानी और निर्भयता से शत्रु-सैनिकों पर भयंकर गोलीवर्षा की, कि शत्रु-सैनिक एक-एक कर गिरने लगे। इतने में अंतिम शत्रु-सैनिक की एक सनसनाती गोली रघुनाथसिंह के हृदय में लगी और वह वहीं ढेर हो गया। इस समय वीर गुल मुहम्मद ने निशाना साधकर अन्तिम अंगरेज़ सैनिक को भी अपनी गोली से ठंडा कर दिया।

इस समय अपना और पराया वहां कोई न बचा था। वीर पठान सैनिक गुल मुहम्मद ने अपनी बन्दूक को फेंक दिया और अपने सैनिक वस्त्र फाड़ डाले और अपने-आप बोला, "हमारा सब साथी मारा गया, आज से हम फकीर बनता है और केवल उस मालिक की याद करेगा और महारानी के आखिरी हुक्म को पूरा करेगा।"

महारानी के शव के जलने के बाद उनकी राख को गुल-मुहम्मद ने सिर-आंखों पर लगाया और भगवान का लाख-लाख धन्यवाद किया और माथे पर हाथ धरकर बोला, "ऐ मालिक ! तेरे खेल निराले हैं इसका भेद तू ही जाने ।"

अब फकीर गुल मुहम्मद ने आसपास से पत्थर-कंकड़ एकत्र कर उस स्थान पर महारानी की समाधि बनाई । अभी उसका चबूतरा बनाकर हटा ही था कि फिर कुछ शत्रु-सैनिक आ धमके । उन्होंने आते ही पूछा, "यह किसकी यादगार है ।"

फकीर गुल मुहम्मद ने कहा, "यह हमारे गुरुपीर की दरगाह है, वह बड़ा ऊंचा फकीर था ।"

उन सैनिकों के जाने के बाद साईं गुल मुहम्मद जब तक वहां रहा, उस स्मृति-स्थल पर अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाता रहा ।

इस प्रकार स्वतन्त्रता-संग्राम—१८५७ की सबसे वीर और साहसी महिला महारानी लक्ष्मीबाई का बलिदान हो गया । वे सदा-सदा के लिए अमर हो गईं ।

किसी कवि ने कहा है—

बुंदेले वीरों के मुख से हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी ।

स्वतन्त्रता-संग्राम का अमर सेनानी

सेनापति तात्याटोपे

○○○○○

महाराष्ट्र प्रान्त में नासिक ज़िले के येवला नामक ग्राम में एक ब्राह्मण परिवार में सन् १८१४ में तात्याटोपे का जन्म हुआ। इनके पिता श्री पांडुरंगराव भट्ट पूना नगर में बाजीराव पेशवा के पास पूजा-पाठ का कार्य करते थे। इनकी माता का नाम रुकमाबाई था। इस बालक का नाम रामचन्द्रराव रखा गया।

सन् १८१८ में बाजीराव पेशवा पूना छोड़कर बिठूर आ गए। बिठूर उत्तर प्रदेश में गंगा के तट पर स्थित एक छोटा-सा गांव है। यह गांव कानपुर नगर से १२ मील उत्तर-पश्चिम की ओर है। कहते हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र की धर्म-पत्नी सीता माता ने यहीं पर वाल्मीकी ऋषि के आश्रम में लव और कुश को जन्म दिया था। तात्याटोपे भी अपने पिता के साथ बिठूर आ गया।

बचपन में ही तात्याटोपे ऐसा बुद्धिमान था, कि बड़े-बूढ़े

उसकी बातें सुनकर चकित रह जाते। इसकी मधुर वाणी सुनकर लोग कह उठते कि यह बालक बड़ा होकर अपने परिवार और देश का नाम उज्ज्वल करेगा। अपने पिता की भांति इसे पूजा-पाठ के कार्य में रुचि न थी। जब कोई सैनिक इसे मिलता, तो यह होनहार बालक बड़े चाव से उससे युद्ध-कला की बातें पूछता। वह बचपन में ही खूब व्यायाम करता, घुड़सवारी करता और तलवार-भाला चलाना सीखता। इसका स्वभाव इतना गम्भीर था, कि यह बहुत कम बोला करता।

बाजीराव पेशवा स्वयं इस बालक से बातें करके प्रसन्न होते थे। एक बार बाजीराव पेशवा ने इस बालक को अपने हाथों से एक मूल्यवान रत्नों से जड़ी हुई टोपी पहनाई। वह टोपी इतनी सुन्दर थी कि लोग इसे टोपे कहकर ही पुकारने लगे। धीरे-धीरे वह तात्याटोपे नाम से ही प्रसिद्ध हो गया। इस बालक ने हिन्दी, गुजराती, मराठी, उर्दू आदि कई भाषाएं सीखीं।

नानासाहब, लक्ष्मीबाई और तात्याटोपे—१८५८ के स्वतन्त्रता-संग्राम के ये तीनों अमर सेनापति यहीं बिठूर में सन् १८४२ तक साथ-साथ रहे। ये युद्ध-कला में एक से एक बढ़कर थे। सन् १८४२ में विवाह हो जाने के फलस्वरूप लक्ष्मीबाई अपने ससुराल चली गई। पर नानासाहब और तात्याटोपे बाद में भी बहुत समय तक साथ ही साथ रहे।

पेशवा परिवार की पेन्शन बन्द होने पर नानासाहब और तात्याटोपे दिन-रात विद्रोह की योजनाएं बनाते रहते। तात्याटोपे घण्टों शान्त रहकर सोचा करता। क्रान्ति का निश्चय

होते ही, भारतवर्ष के कोने-कोने में इसका प्रचार किया गया, परन्तु इस चर्चा को इतना गुप्त रखा गया कि किसी भी अंगरेज़ को इसका पता न चला।

४ जून, सन् १८५७ को कानपुर में विद्रोह आरंभ हुआ। आधी रात के समय भारतीय सैनिकों ने स्वतन्त्रता-संग्राम की घोषणा कर दी। प्रातःकाल होते-होते राज्यकोष लूट लिया गया और युद्ध-सामग्री पर अधिकार कर लिया गया। सारे नगर पर ये लोग ऐसे छा गए, जैसे अंगरेज़ों का राज्य सदा के लिए समाप्त हो गया हो। सब नगरवासियों में बड़ा उत्साह और प्रसन्नता छाई हुई थी।

अंगरेज़ सैनिक भागकर गढ़ में छिप गए। भारतीय सैनिकों ने गढ़ को जा घेरा। २५ जून तक लगातार घोर युद्ध हुआ। गढ़ के भीतर बहुत-से अंगरेज़ सैनिक मारे गए। सेनापति व्हीलर ने अन्त में हार मान ली और सफेद झण्डा फहराकर गढ़, तोपखाना, युद्ध-सामग्री सब कुछ भारतीय सैनिकों को सौंप दिया। अंगरेज़ों को सुरक्षा का विश्वास दिलाया गया।

इस बीच तात्याटोपे यहां से ग्वालियर पहुंचा। वहां के राजा ने तो साथ न दिया, परन्तु वीर तात्या ने गुप्त रूप से जनता और सेना में ऐसा प्रचार किया कि वहां का बच्चा-बच्चा स्वदेश को स्वाधीन कराने के लिए तैयार हो गया। १४ जून को सैनिकों ने विद्रोह कर अंगरेज़ अधिकारियों की मार-काट शुरू कर दी।

ग्वालियर की बहुत-सी सेना और तोपखाना साथ ले, सेनापति तात्याटोपे कालपी की ओर बढ़ा। अंगरेज़ सेनापति

नील से घनघोर युद्ध हुआ। भारतीय सेनापति ने गढ़ को चारों ओर से घेरकर अंगरेज़ी सेना को ऐसा छकाया कि वह जिधर मुंह आया, भाग खड़ी हुई। कालपी नगर पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया।

कुछ दिनों के विश्राम के बाद सेनापति तात्या कानपुर की ओर बढ़ा। मार्ग में जनरल विनढम से युद्ध हुआ। बुद्धिमान तात्या ने अंगरेज़ी सेना को तीन ओर से घेरकर ऐसी मार मारी



कि अनेक तोपों, ग्यारह सहस्र कारतूसों, बहुत बड़ी संख्या में अस्त्र-शस्त्र और पांच लाख रुपया उनसे छीन लिया। अंगरेज़ों का झण्डा उखाड़कर फेंक दिया गया। इस युद्ध में बड़े-बड़े वीर अंगरेज़ मारे गए। अंगरेज़ इतिहासकार मालेसन लिखता है

कि सेनापति तात्याटोपे एक वीर और कुशल सेनापति था।

इधर अंगरेज़ सेनापति सर कालिन कैम्पवेल बहुत बड़ी सेना लेकर लखनऊ से चल पड़ा। १ दिसम्बर को उसकी सेनाएं जनरल तात्या की सेनाओं से गंगा के तट के पास जूझ पड़ीं। इस समय तक इधर-उधर से आकर १४ सहस्र सैनिक सेनापति तात्या के साथ हो गए थे। ६ दिन तक घमासान युद्ध हुआ, कोई भी सेना एक पग भी पीछे हटने को तैयार न थी। अन्त में अंगरेज़ सेनापति ने सेना को कई भागों में बांटकर कई ओर से आक्रमण किया।

निरन्तर कई दिन युद्ध होते रहने के कारण सैनिक थक चुके थे। भारतीय सेना की ग्वालियर वाली मुख्य टुकड़ी इस आक्रमण को न सह सकी और भाग खड़ी हुई। जनरल तात्या ने उसे रोकने का बहुत यत्न किया, पर सफलता न मिली। गंगा के तट से लेकर कानपुर नगर तक शवों के ढेर ही ढेर दिखाई देते थे और भूमि रक्त से लाल हो गई थी। अंगरेज़ जनरल ने बची हुई भारतीय सेना को तीन ओर से घेर लिया। जब विजय की कोई आशा न रही, तो तात्या पीछे हटकर कालपी लौट आया।

जनरल तात्याटोपे एक ऐसा वीर था, जिसने निराशा का पाठ पढ़ा ही नहीं। बहुत सोच-विचार के बाद उसने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए चरखारी राज्य पर आक्रमण कर दिया। यहां का राजा अंगरेज़ों का मित्र था। अचानक आक्रमण करने से वह घबरा गया और हारकर भाग खड़ा हुआ। २४ तोपें और तीन लाख रुपया लेकर सेनापति तात्याटोपे कालपी लौट

आया। सेना को वेतन बांटा गया और विश्राम किया गया।

सेनापति तात्याटोपे चाहता था कि बहुत बड़ी सेना एकत्रित करके ही अंगरेज़ों से युद्ध किया जाए। इसी बीच अंगरेज़ों ने बहुत बड़ी सेना लेकर झांसी को घेर लिया। महारानी लक्ष्मीबाई ने सेनापति तात्या को सहायता के लिए पत्र लिखा। विवश हो, सेनापति तात्या महारानी की सहायता के लिए चल पड़ा।

झांसी को घेरने वाला अंगरेज़ सेनापति ह्यू रोज़ बहुत बड़ी सेना लेकर आया था। अंगरेज़ सैनिकों से भिन्न उसके पास बहुत बड़ी संख्या में भारतीय सैनिक भी थे। जनरल रोज़ ने सेनापति तात्या को मार्ग में ही रोकने का निश्चय किया। १ अप्रैल, सन् १८५८ को झांसी से कुछ दूरी पर ही दोनों सेनाएं खुलकर लड़ीं। १२ घंटे तक निरन्तर युद्ध होता रहा। तात्या की सेनाएं ऐसी वीरता से लड़ीं कि अंगरेज़ों को लेने के देने पड़ गए।

दूसरे दिन अंगरेज़ सेनापति ने अपनी सेना के दो भाग कर लिए। एक तो सामने युद्ध करता रहा और दूसरे ने चक्कर काटकर तात्या को पीछे से जा घेरा। इस घेरे में आकर क्रांतिकारी सैनिक बहुत बड़ी संख्या में मारे गए, परन्तु फिर भी कई घण्टे तक युद्ध होता रहा।

अपनी सभी तोपें खोकर और बहुत बड़ा बलिदान देकर तात्या अपने साथियों सहित कालपी लौट आया। बांदा का नवाब, राजा शाहगढ़, राजा बानापुर, रावसाहब—सभी यहां पर आकर एकत्र हो गए। महारानी लक्ष्मीबाई भी झांसी को

खोकर इनसे आ मिलीं।

इस समय कालपी में इतनी बड़ी सेना थी, कि यदि सब राजा एकत्रित होकर युद्ध करते, तो अंगरेज़ों को विजय करना कठिन काम न था। पर वाह रे हिन्दू और हिन्दुस्तानी ! तूने कभी इतिहास से शिक्षा न ली। जात-पांत, ऊंच-नीच, छोटा-बड़ा—यह भेद तुम्हें ले डूबा। संसार का चक्रवर्ती राज्य करने वाला यह देश स्वार्थ और छोटे-बड़े की दलदल में फंसकर अपना सब कुछ खो बैठा !

तात्याटोपे साधारण परिवार का था, महारानी लक्ष्मीबाई एक स्त्री थी और शेष राजाओं में कोई योग्य न था। सोचते-विचारते कई दिन बीत गए, इतने में सर रोज़ बहुत बड़ी सेना लेकर कालपी पहुंच गया। सेनापति तात्या और महारानी लक्ष्मीबाई ने अंगरेज़ों से युद्ध किया, परन्तु शेष राजा अपनी-अपनी सेना लेकर चल दिए। इस युद्ध में तात्याटोपे और लक्ष्मीबाई हार गए और ग्वालियर के पास जा पहुंचे।

अभी भी ग्वालियर में बहुत-सी सेना पड़ी थी। एक बार फिर बुद्धिमान तात्या ने गुप्त रूप से प्रचार कर उन सबको अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार बिना रक्त की एक बूंद बहाए ग्वालियर पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया। इसके बाद ग्वालियर में जो-जो कुछ हुआ, उसका पूरा विवरण पिछले अध्याय में दे दिया गया है। १८ जून, सन् १८५८ को ग्वालियर पर भी अंगरेज़ों का अधिकार हो गया और महारानी लक्ष्मीबाई वीरगति को प्राप्त हुई।

सेनापति तात्याटोपे अपने बचे-खुचे साथियों को साथ ले

ग्वालियर से निकलकर, नर्मदा नदी की ओर चल पड़ा। अब तक सारे देश में क्रान्ति की अग्नि मन्द हो रही थी और अंगरेज़ बल पकड़ रहे थे। अद्भुत साहसी वीर तात्या ने अन्तिम सांस तक अंगरेज़ों से युद्ध करने की ठान ली। उसकी प्रबल इच्छा थी कि दक्षिण में महाराष्ट्र प्रान्त में जाकर वहां के लोगों को साथ करके, पूरा बल लगाकर, विदेशियों को देश से बाहर धकेल दिया जाए और मातृभूमि को स्वतन्त्र किया जाए।

अंगरेज़ कमांडर सर ह्यू रोज़ खूब जानता था कि तात्या मरहटा है और वह यदि अपने प्रांत में पहुंच गया, तो उसे सम्भालना कठिन हो जाएगा। इसलिए बहुत बड़ी सेना को तात्या को पकड़ने के लिए भेजा गया। जौरा अलीपुर में २२ जून को अंगरेज़ी सेना ने वीर तात्या को घेर ही लिया। सेनापति तात्या अंगरेज़ी सेना की आंखों में धूल झोंककर वहां से साथियों सहित निकल भागा और भरतपुर की ओर चल दिया। मार्ग में ही उसे पता लगा कि भरतपुर में पहले ही बहुत बड़ी अंगरेजी सेना एकत्रित है, तो वह चुपचाप जयपुर पहुंच गया।

जयपुर में कुछ दिन विश्राम कर वह टोंक राज्य की ओर बढ़ा। मार्ग में ही अंगरेज़ कर्नल होम्स की सेनाओं से सामना हो गया। सायंकाल हो रहा था, अंगरेज़ सेनापति ने सोचा, आधी रात को जब सब सैनिक सोए होंगे, तब आक्रमण करूंगा। रात्रि के घनघोर अन्धकार में उसने अपनी सेना को सचेत किया। देखता क्या है, सेनापति तात्याटोपे और उसके

साथियों का नाम भी नहीं है। वह हाथ मलता रह गया।

अब सेनापति तात्या टोंक राज्य के द्वार पर पहुंच गया। क्या देखा कि वहां के नवाब की सेनाएं उससे लड़ने को उद्यत हैं। यह देख तात्या ने अपना हरा झण्डा ऊंचा किया और नवाब की सेनाओं की ओर मुंह कर उच्च स्वर से बोलने लगा, "मेरे मुसलमान भाइयो! हम अपने दिल्ली के सम्राट् बहादुरशाह की आज्ञा पर अंगरेज़ों को मिटाने निकले हैं, आओ! इस हरे झण्डे के नीचे एकत्रित हो जाओ और अंगरेज़ शत्रु को बता दो कि हम सब एक हैं।"

'सम्राट् बहादुरशाह की जय', 'मातृभूमि की जय' के नाद से आकाश गूंज उठा। नवाब की सारी सेना वीर तात्या से मिल गई। ४ तोपें भी तात्या के हाथ लगीं।

इस प्रकार वीरश्रेष्ठ तात्याटोपे अपने बुद्धिबल से टोंक की सेनाओं को साथ ले, आगे बढ़ा। यह दिन विपत्ति के थे। चारों ओर से अंगरेज़ी सेना इसे घेरती आ रही थी। पीछे से कर्नल होम्स की सेना, राजपूताने की ओर से जनरल राबर्ट्स की सेना और तीसरी ओर से चम्बल नदी उमड़ती आ रही थी। धैर्य के अद्भुत धनी वीर तात्या ने बूंदी, नीमच, नसीराबाद होते हुए चित्तौड़गढ़ के पास भीलवाड़ा में जा डेरा किया। ७ अगस्त, सन् १८५८ को जनरल राबर्ट्स के साथ भीषण युद्ध हुआ। रात का अंधकार होते ही सेनापति तात्या वहां से चलकर कोटरा गांव में जाकर रुका। १४ अगस्त को यहां फिर जनरल राबर्ट्स ने आ पकड़ा। कोई चारा न देखकर वीर तात्या ने जमकर युद्ध किया। कई दिनों के

निरन्तर चलते हुए भूखे-प्यासे सैनिक कहां तक लड़ते? अपनी तोपों को वहीं छोड़ वीर तात्या अपने साथियों सहित चम्बल नदी के तट पर पहुंच गया। उसने अपनी आंखों से देखा, चारों ओर अंगरेज़ी सेनाएं उसका मार्ग रोके खड़ी हैं। वर्षा ऋतु के कारण नदी का ओर-छोर दीखता ही न था। विचलित न होने वाला वह अमर सेनानी साथियों सहित तीर की भांति नदी पार कर गया।

बिना हथियारों के भूखे-प्यासे तात्या के सैनिक नदी पार करके झालरापट्टन राज्य की ओर बढ़े। यहां की सेना पहले ही क्रांति करना चाहती थी। वहां के सब सैनिकों ने अपनी सभी युद्ध-सामग्री, ३२ तोपें और बहुत-सा भोजन का सामान वीर तात्या को सौंप दिया। पांच दिन विश्राम कर, १५ लाख रुपया साथ ले और बहुत बड़ी सेना बनाकर भारतीय क्रांति का वीर-सेनानायक इन्दौर की ओर चल पड़ा।

इन दिनों वीरवर तात्याटोपे की सेना ४० से ६० मील प्रतिदिन बढ़ जाती थी। परन्तु अंगरेज़ी सेनाओं की चाल धीमी थी, इसीलिए वे सेनाएं क्रांतिकारी सेना को पकड़ नहीं पाती थीं। ६ अंगरेज़ी सेनाएं होम्स, राबर्ट्स, लौखार्ट, मिचेल, पार्क और होप जैसे नामी सेनापतियों के अधीन इनका बराबर पीछा कर रही थीं। अंगरेज़ सेनापति इस सुयोग्य सेनानायक तात्या का साहस देख घबरा उठे। रायगढ़ में फिर एक बार तात्या घिर गया। वीर भारतीय सेनापति ने अपनी सेना को गोल घेरे में खड़ाकर युद्ध शुरू कर दिया। ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि अंगरेज़ी सेनाओं को लेने के देने पड़ गए।

अंगरेज़ सेना को घबराहट में डाल, वीर तात्या आंधी की गति से विदेशी सेना को चीरकर निकल गया।

वहां से उत्तर दिशा की ओर ईशगढ़ नामक राज्य था। भारतीय क्रांतिकारी सेना ने उत्तर दिशा की ओर बढ़ ईशगढ़ पर आक्रमण कर दिया। इस राज्य को विजय कर बहुत-सी तोपें और युद्ध-सामग्री पर अधिकार कर लिया गया। बांदा का नवाब और रावसाहब पेशवा भी इन दिनों वीर तात्या के साथ थे।

अंगरेज़ इतिहासकार सेनापति तात्याटोपे के सम्बन्ध में लिखता है, "आश्चर्य की बात है, कि जो अंगरेज़ सेनापति वीर तात्या का पीछा कर रहे थे, यूरोप में उनकी वीरता की छाप पड़ी हुई थी, परन्तु वीर तात्या के सामने उन्होंने ऐसी करारी हार खाई कि उनसे कुछ भी करते न बना। मानना पड़ेगा कि निश्चय ही सेनापति तात्याटोपे उस युग का एक विलक्षण वीर और साहसी पुरुष था।"

सिंधिया राज्य की रियासत ईशगढ़ को विजय कर यह सेना ललितपुर की ओर बढ़ी। अब भी कर्नल लिडेल, कर्नल मीड, सेनापति मिचेल और सेनापति राबर्ट्स इनका पीछा कर रहे थे। विदेशी सेना को चक्कर में डालता हुआ वीर तात्या ललितपुर से रायगढ़ जा पहुंचा। यहां पर कुछ दिन विश्राम करके वह दक्षिण की ओर बढ़ा। नर्मदा नदी को पार करने के लिए इन्होंने अपनी गति और भी तीव्र कर दी। अंगरेजों ने बहुतेरे हाथ-पांव मारे पर उनके देखते ही देखते वीर तात्या की सेना नदी को पार करके निकल गई।

बढ़ते-बढ़ते रावसाहब पेशवा, बांदा नवाब और सेनापति तात्या मनचले वीरों के साथ नागपुर पहुंच गया। यहां कुछ दिन विश्राम कर यह सेना बड़ौदा की ओर चल पड़ी, परन्तु मार्ग में नर्मदा नदी पड़ती थी। बड़े तीव्र वेग से वीर तात्या अपने साथियों सहित नर्मदा नदी की ओर फिर बढ़ा। मार्ग में मेजर सडरलैंड की सेना पड़ी थी। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध शुरू हो गया। इतनी देर में दूसरी ओर से और अंगरेज़ी सेनाएं आ गईं। अब सेनापति तात्या के संकेत पर तोपें आदि सब युद्ध-सामग्री वहीं छोड़, यह वीर सेना नर्मदा नदी की ओर बढ़ गई और तैर कर नदी पार कर गई। नर्मदा नदी इस स्थान पर बहुत चौड़ी है और पत्थरों से भरी पड़ी है। अंगरेज़ सेना तात्या की सेना का अद्भुत साहस देख कर आश्चर्य चकित रह गई। भारतीय वीर एक बार फिर आंधी की भांति चल पड़े।

अब यह वीर सेना चलते-चलते राजपुरा राज्य के पास जा पहुंची। कुछ दिन विश्राम कर, कुछ धन लेकर, वीर तात्या अपने मार्ग की ओर चल पड़ा। अनुपम वीर तात्या को पता लगा कि बड़ौदा के पास एक और शत्रु की सेना पड़ी है इसलिए वह छोटा उदयपुर से ही मार्ग बदलकर मेवाड़ की ओर चल पड़ा। बांदा नवाब इन विपत्तियों से घबरा गया और अपने साथियों से अलग हो, अंगरेज़ों को आत्म-समर्पण कर बैठा।

चलते-चलते फिर एक बार तात्या का अंगरेज़ी सेनाओं से सामना होने पर संग्राम छिड़ गया। अब न तो वीर तात्या

की सेना के पास तोपें थीं और न ही अधिक सैनिक थे। इसलिए यह सेना पीछे हटते-हटते एक वन में जा घुसी। अंगरेज़ी सेना ने यहां भी पीछा न छोड़ा और उन वीर सैनिकों को घेरने का पूरा-पूरा यत्न किया। यहां ये क्रांतिकारी वीर भयंकर विपत्ति में पड़ गए, परन्तु साहस न छोड़ा। इस प्रदेश में जल की बहुत कमी है। कच्चे तालाबों का जल पी-पीकर यहां दिन बिताए गए। यहां से अमर वीर तात्या अपने साथियों सहित प्रतापगढ़ की ओर बढ़ गया। इस ओर मेजर राक की सेना पड़ी थी। भयंकर संग्राम में उन्हें हराकर यह अमर सेना बांसवाड़ा का जंगल लांघकर पार निकल गई। दिल्ली का राजकुमार फीरोजशाह भी यहां आकर इनसे मिल गया। सिंधियाराज का एक सरदार मानसिंह भी आ मिला। पर इस समय भी कई अंगरेजी सेनाओं का जाल चारों ओर बिछा हुआ था। सेनापति नेपियर, सेनापति शावर्स, सेनापति मिचेल, सेनापति वैनसेन, सेनापति वानर और सेनापति सामरसैट—हर तरफ से इन्हें घेरने का भरपूर यत्न कर रहे थे, परन्तु तात्या भी हार मानने वाला नहीं था।

वीर तात्या की सेना ने जिस साहस का परिचय दिया। उसका इतिहास में शायद ही कोई दूसरा उदाहरण हो। १६ जनवरी, सन् १८५७ को प्रातःकाल के समय देवास में एक स्थान पर वीर सेनापति तात्याटोपे, रावसाहब पेशवा और राजकुमार बहादुरशाह बैठे कुछ विचार कर रहे थे, कि एक अंगरेज अफसर ने तत्क्षण पहुंचकर वीरश्रेष्ठ तात्या की कमर में हाथ डालकर उसे पकड़ना चाहा! और जब बाहर देखा, तो अंग-

रेज़ों की सेना ! अब क्या था, देखते-देखते ये तीनों वीर वहां से निकल, उनकी आंखों से ओझल हो गए, और अंगरेज उनका बाल भी बांका न कर सके। शत्रु का यह प्रयत्न भी बेकार गया।

२१ जनवरी, सन् १८५९ को यह वीर क्रांतिकारी चलते-चलते अलवर के पास शिखरजी नामक गांव में जा पहुंची। सिंधिया का सरदार मानसिंह कुछ दिन पहले इनसे अलग हो गया था, उसने गुप्त रूप से अंगरेज़ों से मिलकर इन्हें पकड़वाने का यत्न किया, परन्तु सफल न हुआ। अब उसने वीर तात्या को अपनी चाल में लाने का यत्न किया। एक स्थान पर वीर तात्या और मानसिंह अकेले बैठकर विचार करने लगे। ७ अप्रैल, सन् १८५९ को आधी रात के समय उस देशद्रोही मानसिंह ने अनुपम वीर तात्या को छल से सोते-सोते बन्दी बना लिया।

शिवपुरी की सनिक छावनी में १८ अप्रैल, सन् १८५९ को अमर वीर तात्या को फांसी देने का दिन नियत किया गया। सैनिक पहरे में एक खुली भूमि में प्रबन्ध किया गया। सहस्रों लोग आसपास के पेड़ों, टीलों और अन्य स्थानों पर खड़े होकर उस अनुपम साहसी वीर तात्याटोपे का अन्तिम दर्शन करने को एकत्र हुए। लोगों की आंखों से अविरल अश्रु-धारा बह रही थी। हथकड़ियों और बेड़ियों के खुलते ही उस महान देशभक्त ने सबको दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते कहा और हंसते-हंसते तख्ते पर चढ़ गया और अपने हाथों से फांसी का फन्दा अपने गले में डाल लिया। तख्ते के हटते ही १८५७

के स्वतन्त्रता-संग्राम का अनुपम साहसी योद्धा देश की वेदी पर बलिदान हो गया। कुछ अंगरेज़ सैनिकों ने दौड़कर वीर तात्या के मस्तक के पास कुछ केश काट लिए और उनको उस वीर की स्मृति के रूप में अपने पास रख लिया। जिस वीर ने ग्वालियर से निकलने के बाद निरन्तर दस मास तक बड़े-बड़े वीर अंगरेज़ सेनापतियों को चकरा दिया और उनके सब यत्नों को विफल कर दिया, वह आज अपने भाई के विश्वासघात के कारण शत्रु के हाथों पकड़कर मारा गया!

सेनापति तात्याटोपे के अमर बलिदान के बाद कुछ समय तक तो राजकुमार फीरोज़शाह और राबसाहब लड़ते रहे। फिर वेश बदलकर वनों में छिप गए। २० अगस्त, १८६० को राव-साहब पकड़े गए और कानपुर में उन्हें भी फांसी मिली। और राजकुमार फीरोज़शाह फकीर का वेश बनाकर अरब देश को चला गया।

भारत मां के सपूतो! अपने बीते इतिहास से शिक्षा लो और माला के मनकों की भांति अपने देशवासियों को एक सूत्र में पिरोकर, देश को संगठित कर दो। देश की उन्नति के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने में भी न चूको।

रुहेलखण्ड का अमर सेनापति

मुहम्मद बख्तखां

○ ○ ○ ○ ○

रुहेलखण्ड की राजधानी बदायूं है। १ जून, सन् १८५७ को नगर में घोषणा की गई कि अंगरेजी राज्य समाप्त हो गया है और राज्य की बागडोर सूबेदार खानबहादुरखां ने संभाल ली है। अंगरेज़ यह सुनते ही वनों में भाग गए।

बरेली, शाहजहांपुर और मुरादाबाद की ६८ नम्बर, २८ नम्बर और २९ नम्बर की भारतीय सेनाओं ने एक ही दिन ३१ मई को अपने-अपने नगरों में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। अंगरेज़ अधिकारियों को अपनी जीवन-रक्षा करनी कठिन हो गई। मुहम्मद बख्तखां के अधीन यह सब सेनाएं दिल्ली को चल पड़ीं।

१ जुलाई को इन सेनाओं ने दिल्ली में प्रवेश किया। दिल्ली तो ११ मई को ही स्वतंत्र हो चुका था और वृद्ध बहादुर-शाह भारत का सम्राट घोषित हो चुका था। मुगल-सम्राट बाबर से लेकर शाहजहां के राज्यकाल तक गो-हत्या अपराध

माना जाता था। वृद्ध सम्राट बहादुरशाह ने हाथी पर बैठकर सारे नगर में घूम-घूमकर घोषणा कर दी थी कि गो-हत्या करनेवाले को मृत्युदण्ड दिया जाएगा। इस प्रकार सारे नगर में प्रबन्ध स्थापित किया गया था। जनता के उत्साह के तो क्या कहने। स्वतन्त्रता की खुशी में लोग फूले न समाते थे। स्थान-स्थान पर फ्रांसीसियों की देख-रेख में गोला, बारूद और तोपें ढाली जा रही थीं।

हां, तो मुहम्मद बख्तखां का दिल्ली में भरपूर स्वागत हुआ। इस वीर की योग्यता देखकर सभी लोगों ने मिलकर इसे दिल्ली का महान सेनापति बना दिया। इसने प्रबन्ध सम्भालते ही घोषणा कर दी कि यदि कोई सैनिक बिना मूल्य दिए किसी व्यापारी से कोई भी वस्तु लेगा, तो उसका एक



हाथ काट दिया जाएगा।

इस प्रकार इस वीर ने प्रबन्ध को इतनी उत्तम रीति से सम्भाला कि नगर में चारों ओर शान्ति स्थापित हो गई। अपराधियों को घोर दण्ड दिए जाते थे। इस समय अंगरेज़ी सेना दिल्ली की दीवारों के नीचे पड़ी थी। ५ जुलाई से पहले-पहले दो अंगरेज़ सेनापति मर चुके थे और उनपर निराशा का साम्राज्य छा गया था।

स्वतंत्र दिल्ली के स्वतंत्र सैनिक प्रतिदिन नगर से निकल अंगरेज़ी सेना का भरपूर विनाश करके लौट आते थे। दिल्ली में प्रतिदिन नई से नई सेनाओं का प्रवेश हो रहा था और लोगों के हृदय प्रसन्नता से नाच रहे थे। ९ जुलाई को मुहम्मद बख्तखां ने अंगरेज़ों पर ऐसी भीषण मार की कि अंगरेज़ी सेना की उस दिन बड़ी दुर्गति हुई। अंगरेज़ सैनिकों ने शिविर में लौटने पर उस दिन क्रोध में भरकर अपनी सेवा करने वाले निरपराध बहुत-से भारतीय नौकर-चाकरों को मार डाला।

१४ जुलाई को एक बार फिर भारत की स्वतन्त्र सेनाओं ने अंगरेज़ी सेना की वह दुर्दशा की, कि अंगरेज़ सेनापति रीड का हृदय धड़कने लगा और वह छुट्टी लेकर चला गया। दिल्ली को स्वतन्त्र हुए दो मास से अधिक समय हो चुका था और सबसे विचित्र बात यह थी कि पंजाब से जो-जो सेनाएं अंगरेज़ों की सहायता के लिए आईं, उनसे कुछ भी करते न बना।

इस अवसर पर पंजाब के पटियाला, जींद आदि सभी राज्यों ने जहां अपनी सेनाओं से अंगरेज़ों की सहायता की, वहां भरपूर युद्ध-सामग्री और अन्न-भण्डार भी दिए। पंजाब

से आने वाली सहायता से धीरे-धीरे अंगरेज़ी सैनिक शक्ति बढ़ती गई।

हमारे देश में हिन्दू क्या मुसलमान क्या, सभीमें जात-पांत, छोटे-बड़े का भेद घर किए हुए है। मुहम्मद बख्तखां एक छोटे घराने से थ , इसलिए बहुत-से लोग उससे जलने लगे और उसकी आज्ञा मानने में आनाकानी करने लगे। इस समय तक लगभग पचास सहस्र सैनिक दिल्ली में एकत्रित थे। परन्तु मुहम्मद बख्तखां के सिवा किसीमें शासन की योग्यता न थी। वृद्ध सम्राट बहादुरशाह ने भारत के बड़े-बड़े राजाओं, जयपुर, जोधपुर, ग्वालियर, बीकानेर के नाम पत्र लिखे कि आओ, भारत की स्वाधीनता के नाम पर आओ और देश की बागडोर सम्भालो, और फिरंगियों को निकाल बाहर करो। परन्तु कुछ परिणाम न निकला।

२५ अगस्त को फिर एक बार मुहम्मद बख्तखां ने पूरे बल से अंगरेजों पर आक्रमण किया। इस समय बरेली की और नीमच (मध्य भारत) की दो सेनाओं में बड़े-बड़े वीर योद्धा थे। इन दोनों सेनाओं को साथ लेकर बख्तखां सेनापति ने शत्रु पर धावा बोला दिया। दुर्भाग्य की बात, ये दोनों सेनाएं आपस में एक-दूसरे से जलती थीं। सेनापति मुहम्मद बख्तखां के बार-बार समझाने का भी कोई प्रभाव न हुआ और नीमच की सेना अपने सेनापति की आज्ञा के विरुद्ध दूसरी ओर चली गई। अंगरेज सेनापति निकलसन ने दूसरी ओर से घूमकर नीमच की सेना पर आक्रमण कर दिया। ये नीमच के वीर बड़े पराक्रम से लड़े, परन्तु बिना सेनापतिके कब तक लड़ते ! ये सभी योद्धा

से आने वाली सहायता से धीरे-धीरे अंगरेज़ी सैनिक शक्ति बढ़ती गई।

हमारे देश में हिन्दू क्या मुसलमान क्या, सभीमें जात-पांत, छोटे-बड़े का भेद घर किए हुए है। मुहम्मद बख्तखां एक छोटे घराने से थ, इसलिए बहुत-से लोग उससे जलने लगे और उसकी आज्ञा मानने में आनाकानी करने लगे। इस समय तक लगभग पचास सहस्र सैनिक दिल्ली में एकत्रित थे। परन्तु मुहम्मद बख्तखां के सिवा किसीमें शासन की योग्यता न थी। वृद्ध सम्राट बहादुरशाह ने भारत के बड़े-बड़े राजाओं, जयपुर, जोधपुर, ग्वालियर, बीकानेर के नाम पत्र लिखे कि आओ, भारत की स्वाधीनता के नाम पर आओ और देश की बागडोर सम्भालो, और फिरंगियों को निकाल बाहर करो। परन्तु कुछ परिणाम न निकला।

२५ अगस्त को फिर एक बार मुहम्मद बख्तखां ने पूरे बल से अंगरेजों पर आक्रमण किया। इस समय बरेली की और नीमच (मध्य भारत) की दो सेनाओं में बड़े-बड़े वीर योद्धा थे। इन दोनों सेनाओं को साथ लेकर बख्तखां सेनापति ने शत्रु पर धावा बोला दिया। दुर्भाग्य की बात, ये दोनों सेनाएं आपस में एक-दूसरे से जलती थीं। सेनापति मुहम्मद बख्तखां के बार-बार समझाने का भी कोई प्रभाव न हुआ और नीमच की सेना अपने सेनापति की आज्ञा के विरुद्ध दूसरी ओर चली गई। अंगरेज सेनापति निकलसन ने दूसरी ओर से घूमकर नीमच की सेना पर आक्रमण कर दिया। ये नीमच के वीर बड़े पराक्रम से लड़े, परन्तु बिना सेनापतिके कब तक लड़ते ! ये सभी योद्धा

एक-एक करके मारे गए और शत्रु जीत गया। सेनापति मुहम्मद बख्तखां निराश होकर नगर में लौट आया।

७ सितम्बर को अंगरेज़ों ने नगर में प्रवेश करने के लिए भरपूर बल लगाया, परन्तु उन्हें सफलता न मिली। अंगरेज़ी सेनाएं प्रतिदिन पूरे बल से दिल्ली पर आक्रमण करतीं, परन्तु निराश लौटतीं। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के सैनिकों ने वह वीरता दिखाई कि शत्रु चकित रह गया। १४ सितम्बर को अंगरेज़ सेनापति ने अपनी सेना को कई भागों में बांटकर आंधी की गति से काश्मीरी द्वार पर आक्रमण कर दिया। इधर किले की दीवार से भारतीयों ने वह गोले बरसाए कि सिख सैनिकों के शवों के ढेर के ढेर लग गए और कई अंगरेज़ अफसर भी मारे गए, परन्तु सफलता न मिली।

अन्त में अंगरेज़ों ने बारूद से काश्मीरी द्वार का एक भाग फोड़ ही लिया और नगर में प्रवेश किया। नगर के भीतर एक-एक पग पर, एक-एक घर पर अंगरेज़ों से युद्ध लड़ा गया। काबुली द्वार के पास एक छोटी-सी गली में वह युद्ध हुआ कि रक्त की धारा बह निकली, परन्तु अंगरेज़ों को आगे बढ़ने से रोक दिया गया। विवश हो अंगरेज़ी सेनाएं काश्मीरी द्वार पर लौट आईं।

इसी प्रकार जब अंगरेजी सेना जामा मस्जिद के पास पहुंची, तो सहस्रों लोग तलवारें हाथ में ले-लेकर अंगरेज़ी सेना पर टूट पड़े। कई दिन के भीषण युद्ध के बाद १९ सितम्बर तक दिल्ली नगर के तीन चौथाई भाग पर अंगरेज़ों का अधिकार हो गया।

सेनापति मुहम्मद बख्तखां सम्राट बहादुरशाह के पास गया और कहा कि अब विजय की आशा नहीं रही और आप मेरे साथ दिल्ली से निकल चलें, परन्तु वृद्ध सम्राट कोई निर्णय नहीं कर सके। सम्राट का दामाद मिरज़ा इलाहीबख्श अंगरेज़ों से मिला हुआ था, उसने सम्राट को समझाया कि आप यहीं रहें, मैं अंगरेज़ों से आपको क्षमा दिलवा दूंगा। सम्राट इस भुलावे में आ गए और उन्होंने सेनापति बख्तखां का प्रस्ताव ठुकरा दिया।

निराश हो, मुहम्मद बख्तखां ने अपने साथियों सहित दिल्ली छोड़ दी। सेनापति के दिल्ली से निकलते ही देशद्रोही मिरज़ा इलाहीबख्श ने नगर का पश्चिमी द्वार खोल दिया, और अंगरेज़ों का दिल्ली पर पूरा अधिकार हो गया। सम्राट के दो पुत्रों को गोली से मार दिया गया और सम्राट को बन्दी बनाकर बर्मा भेज दिया गया, जहां उसका देहान्त हुआ। रंगून नगर में आज भी सम्राट की समाधि खड़ी है। आज़ाद हिन्द सेना के अमर नेता सुभाषचन्द्र बोस ने वहां जाकर वृद्ध सम्राट बहादुरशाह को अपनी श्रद्धा के फूल भेंट किए थे।

दिल्ली पर अंगरेज़ों का पुनः अधिकार होते ही उन्होंने तीन दिन तक नगर को जी-भर के लूटा और मन्दिरों, मस्ज़िदों को नष्ट कर दिया। सहस्रों पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों को नंगे पांव, नंगे सिर, भूख-प्यास से व्याकुल दिल्ली से बाहर निकाल दिया गया। सहस्रों देवियों ने अपने धर्म की रक्षा के लिए कुओं में कूद-कूदकर प्राण दे दिए। इतना अधिक बलिदान हुआ कि कुओं में डूबने के लिए पानी भी न बचा।

उधर सेनापति मुहम्मद बख्तखां दिल्ली से निकल यमुना पार कर कहां गया, इसका आज तक कुछ पता नहीं चला।

पहले भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इन सैनिकों ने कहीं भी आत्मसमर्पण नहीं किया। अपितु जब तक अन्तिम सैनिक जीवित रहा, ये भारतीय स्वतन्त्रता के परवाने शत्रु से लड़ते-लड़ते वीर-गति को प्राप्त हुए। उन्होंने मातृभूमि के गौरव को बहुत उन्नत कर दिया।

बिहार का अमर वीर

कुंवरसिंह

○ ○ ○ ○ ○

बिहार प्रान्त की राजधानी पटना नगर सन् १८५२ से ही गुप्त रूप से क्रान्ति की तैयारियां कर रहा था। धनी, निर्धन, भूमिहार, किसान और सभी प्रतिष्ठित लोग स्वतन्त्रता के लिए तन, मन, धन न्योछावर करने को उद्यत थे। यहां तक कि एक-एक पुलिस कर्मचारी भी पूरी सहायता कर रहा था।

दानापुर की तीन भारतीय सेनाओं ने २५ जुलाई, सन् १८५७ को स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। उन्होंने अंगरेजी झण्डे यूनियन जैक को फाड़ दिया और सोन नदी की ओर बढ़ चले। इसी ओर जगदीशपुर, जिला शाहाबाद में एक ८० वर्षीय वृद्ध क्षत्रिय राजा कुंवरसिंह राज्य करता था। भारतीय सेनाएं एक योग्य सेनापति की खोज में चलती-चलती जगदीशपुर पहुंच गईं। राजप्रासाद के समीप पहुंचकर ये सेनाएं रुक गईं। स्वतन्त्रता के पुजारी क्षत्रियराज कुंवरसिंह ने तलवार उठाकर प्रतिज्ञा की कि जब तक शरीर में रक्त की

अन्तिम बूंद है, फिरंगियों को चैन से नहीं बैठने देंगे। इस घोषणा से भारतीय सैनिकों के हृदय प्रसन्नता से उछल पड़े। अब क्या था, कुंवरसिंह के अधीन ये सेनाएं जगदीशपुर से चलकर आरा पहुंचीं। राज्य-कोष पर अधिकार कर बन्दीगृह तोड़कर, ये सेनाएं गढ़ की ओर बढ़ीं। कुंवरसिंह के सैनिकों ने गढ़ को चारों ओर से घेरकर ऐसी नाकेबन्दी की कि अंगरेज सैनिक पानी के बिना तड़प-तड़पकर मरने लगे।

आरा का समाचार पाते ही २९ जुलाई को कप्तान डनबर सेना लेकर दानापुर से चल पड़ा। आरा के बाहर एक आम का उद्यान था। यहां एक-एक पेड़ पर कुंवरसिंह ने अपने सैनिकों को छिपा दिया। रात्रि के अन्धकार में जब अंगरेज़ी सेना बढ़ते-बढ़ते इस उद्यान के समीप पहुंची, तो तत्क्षण भारतीय सैनिकों ने धुआंधार गोलियां बरसानी शुरू कर दीं। प्रातःकाल होते-होते भारतीय वीरों ने वह पराक्रम दिखलाया कि कप्तान डनबर सहित लगभग सभी अंगरेज़ सैनिक मारे गए।

कप्तान डनबर की मृत्यु का समाचार पाकर मेजर आयर एक बहुत बड़ी सेना लेकर आरा की ओर बढ़ा। बीबीगंज के पास ही २ अगस्त को ये दोनों सेनाएं भिड़ गईं। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। वीरवर कुंवरसिंह की कमान में क्रान्तिकारी सेनाएं बड़ी वीरता से लड़ीं। अंगरेज़ी सेना की संख्या क्रान्तिकारियों की अपेक्षा कई गुना थी और उनके पास तोपखाना भी था, इसलिए भारतीय सैनिक उनका पार न पा सके। विजय की आशा छोड़, वृद्ध कुंवरसिंह जगदीशपुर को लौट आया।



अंगरेज़ सेनापति ने भी पीछा करते-करते १४ अगस्त को जगदीशपुर आ घेरा। कई दिन तक निरन्तर युद्ध होता रहा। जब कुंवरसिंह के बहुत-से सैनिक मारे गए और विजय की आशा न रही, तो वह जगदीशपुर को खाली कर बाहर निकल गया।

यहां से निकल कुंवरसिंह ने अतरौलिया नामक स्थान में डेरा लगाया। समाचार पाते ही अंगरेजी सेना ने मिलमैन के

अधीन २१ मार्च, सन् १८५८ को कुंवरसिंह को जा घेरा। कुंवरसिंह ने एक चाल चली। अपनी सेना को इतना पीछे हटा लिया कि अंगरेज उसे अपनी विजय ही मानने लग गए। निश्चन्त हो अंगरेज़ी सेना भोजन करने लगी। कुंवरसिंह इस देश की पग-पग भूमि से परिचित था। बुढ़ापे में भी वह इतना फुर्तीला था, कि देखने वाले चकित हो जाते थे। कुंवर-सिंह की आज्ञा पा, भारतीय सैनिक इतनी शीघ्रता से अंगरजों पर टूट पड़े, जैसे बाज़ अपने शिकार पर टूटता है। थोड़े-से युद्ध में ही अंगरेज़ी सेना युद्धभूमि छोड़कर भाग खड़ी हुई और विजय कुंवरसिंह की हुई। सैकड़ों बैलगाड़ियां, युद्ध-सामग्री और तोपें कुंवरसिंह के हाथ लगीं।

सेनापति मिलमैन की हार का समाचार पाते ही एक दूसरी सेना कर्नल डोम्स के अधीन आजमगढ़ पहुंच गई। २८ मार्च को भारतीय स्वतन्त्रता के पुजारी सैनिकों और अंगरेज़ी सेना में युद्ध ठन गया। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। वीरता के धनी कुंवरसिंह ने अंगरेज़ों के छक्के छुड़ा दिए, और अंगरेज़ सेनापति डोम्स भागकर आजमगढ़ जा छिपा। इस प्रकार इस युद्ध में जहां कुंवरसिंह ने विजय प्राप्त की, वहां शत्रु की बहुत-सी युद्ध-सामग्री भी छीन ली। आजमगढ़ को विजय कर वीरश्रेष्ठ कुंवरसिंह बनारस की ओर बढ़ा।

भारत का वायसराय लार्ड कैनिंग कुंवरसिंह की निरन्तर विजय के समाचार सुन घबरा गया। उसने बहुत बड़ी सेना देकर लार्ड मार्क को कुंवरसिंह से युद्ध करने को भेजा। ६ अप्रैल को दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। कुंवरसिंह सरीखे

बुद्धिमान् सेनापति के अधीन भारतीय सेनाओं ने एक बार फिर अंगरेज़ी सेना के छक्के छुड़ा दिए और शत्रु सेना बहुत-सी तोपें युद्ध-भूमि में छोड़ जिधर मुंह आया, भाग निकली। बचे-खुचे अंगरेज़ सैनिकों ने आजमगढ़ के किले में जा दम लिया।

अब सेनापति लगर्ड एक बहुत बड़ी सेना लेकर आजमगढ़ की ओर चल पड़ा। इसकी सूचना कुंवरसिंह को मिल गई। तानू नदी के पुल पर कुंवरसिंह ने सेनापति लगर्ड को जा रोका। यहां पर कुंवरसिंह ने एक चाल चली। इसने अपनी मुख्य सेना को तो छिपा दिया और थोड़े-से सैनिकों को साथ ले अंगरेज़ों से जूझ पड़ा। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। अब कुंवरसिंह ने धीरे-धीरे पीछे हटना शुरू किया। सेनापति लगर्ड ने १२ मील तक कुंवरसिंह का पीछा किया, परन्तु वीरश्रेष्ठ कुंवरसिंह का पता ही न लगा। हताश होकर अंगरेज़ी सेना लौटने लगी। इसी बीच एक चक्कर काटकर कुंवरसिंह शत्रु सेना पर बिजली की भांति टूट पड़ा। इस घबराहट में कई बड़े-बड़े अंगरेज़ वीर काम आए और अंग्रेज़ी सेना को पीछे भागना पड़ा।

अंगरेज़ी सेना को हार पर हार देता हुआ वीर कुंवरसिंह गंगा की ओर बढ़ा। इस बीच एक नई अंगरेज़ी सेना सेनापति डगलस के अधीन बढ़ी और तवई ग्राम के निकट दोनों सेनाओं में टक्कर हो गई। यहां कुंवरसिंह ने अपनी सेना के तीन भाग किए। एक भाग डगलस के आमने-सामने जाकर युद्ध करने लगा। इस सेना की संख्या बहुत कम थी, परन्तु इनकी वीरता सराहनीय थी। लड़ते-लड़ते डगलस ने इस सेना को चार मील तक पीछे हटाया। अन्त में अंगरेज़ी सेना थककर विश्राम

करने लगी। तत्क्षण वीर कुंवरसिंह की सेना के शेष दोनों भागों ने अंगरेज़ी सेना पर आक्रमण कर दिया। भारतीय वीरों ने ऐसा डटकर युद्ध किया कि अंगरेज़ी सेना को लेने के देने पड़ गये। युद्ध में हार खाकर डगलस की सेनाएं युद्ध-भूमि छोड़ भाग खड़ी हुईं।

अब विजयी कुंवरसिंह की सेनाएं घाघरा नदी को पार-कर मनोहरपुर ग्राम में जा रुकीं। यहां फिर एक बार डगलस की सेनाओं से टक्कर हो गई। कुंवरसिंह ने फिर अपनी सेना को कई भागों मे बांटकर युद्ध किया, अंगरेज़ उनका पार न पा सके। इधर रात्रि के घने अन्धकार में कुंवरसिंह ने शिव-पुर घाट से नावों द्वारा गंगा को पार किया। अंतिम नाव जिसमें वीरश्रेष्ठ कुंवरसिंह जा रहा था, उसपर अंगरेज़ों ने गोलियां बरसानी शुरू कर दीं। एक गोली ने कुंवरसिंह के दाहिने हाथ को घायल कर दिया। कहीं सारे शरीर में विष न फैल जाए, अतः उस साहसी वीर ने अपनी तलवार से वह हाथ काटकर गंगा की भेंट कर दिया।

आठ मास बाद वीर कुंवरसिंह अपनी राजधानी की ओर बढ़ा। वह जगदीशपुर पहुंचा ही था कि जनरल लीग्रेंड बहुत बड़ी सेना लेकर आ झपटा। ऐसा भीषण युद्ध हुआ जिसका उदाहरण संसार में शायद ही हो। वह वृद्ध घायल वीर आंधी की भांति शत्रु पर टूट पड़ा और उनके सैनिकों को गाजर-मूली की भांति काटने लगा। अंगरेज़ों ने भागकर वन में आश्रय लिया। सहस्रों सैनिक गरमी के कारण प्यासे मर गए। गन्दे छोटे तालाबों का पानी पीने को मिला। चारों ओर

घायलों और प्यासों की पुकार ही पुकार हो रही थी। जनरल लीग्रैंड भी घायल हो गया।

शत्रुसेना की ऐसी दुर्गति कर, उनकी सब तोपें और युद्ध-सामग्री छीन, वीरश्रेष्ठ कुंवरसिंह घायल अवस्था में जगदीशपुर लौटा। दुर्भाग्य से उसका हाथ ठीक न हुआ, और स्वतन्त्रता का पुजारी वीर २६ अप्रैल को अपने महलों में ही स्वर्ग सिधार गया। उस समय जगदीशपुर पर भारतीय स्वतन्त्रता का झण्डा लहरा रहा था। स्वतन्त्रता का पुजारी अपने जीवन की अन्तिम सांस तक स्वतन्त्रता के लिए लड़ा और स्वतन्त्र होकर ही मरा।

कुंवरसिंह एक महान् वीर और सदाचारी राजा था। उसकी प्रजा और सेना उसके संकेत पर तन, मन, धन, सब न्यौछावर करने को तैयार रहती थी।

उसके सामने किसीको भी सिगरेट-तम्बाकू पीने का साहस नहीं होता था। सच बात तो यह है कि चरित्र-बल संसार में सबसे बड़ा बल है। इसके बिना कोई भी व्यक्ति संसार में शोभा नहीं पाता। यह केवल सदाचार का बल ही था कि अस्सी वर्ष की बुढ़ापे की आयु में कुंवरसिंह ने वे अलौकिक कार्य कर दिखाए, जिनकी मिसाल शायद ही कहीं मिले। इस सम्बन्ध में एक अंगरेज़ ने बड़े सुन्दर शब्द कहे हैं—

जब धन खोया, मानो कुछ नहीं खोया।
जब स्वास्थ्य खोया, तो मानो कुछ खोया।
जब चरित्र खोया, तो मानो सब कुछ खोया।

इसलिए प्यारे बच्चो, सारी शक्ति लगाकर चरित्र की रक्षा

करो। किसी भी मूल्य पर अपने सदाचार को न खोओ। याद रखो, चरित्रवान और सदाचारी पुरुष ही संसार में प्रतिष्ठा पाता है।

अंगरेज़ जैसे बुद्धिमान और संगठित शासक को नाकों चने चबवाना इस वीर का ही कार्य था। तनिक तुलना तो कीजिए, कहां एक ओर सब प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित बड़े-बड़े अनुभवी अंगरेज़ सेनापतियों की कमान में बड़ी-बड़ी सेनाएं, और दूसरी ओर थोड़ी संख्या में भारतीय स्वतन्त्रता के परवाने सैनिक। इसपर भी स्थान-स्थान पर शत्रुसेना के ऐसे छक्के छुड़ाये कि उन्हें छठी का दूध याद आ गया। धन्य है कुंवरसिंह तुम्हारी शूरवीरता और देशभक्ति को! जो अलौकिक कार्य भारतमाता के इस लाल ने ८० वर्ष की आयु में कर दिखाया उसका उदाहरण संसार के इतिहास में दुर्लभ है। ८० वर्ष की आयु बुढ़ापे का वह समय है, जबकि शरीर दुर्बल होकर अंग-अंग कांपने लगता है। प्रभु करे, हमारे देश में ऐसे-ऐसे वीर बार-बार जन्में और मातृभूमि का गौरव बढ़े।

किसी कवि ने क्या ही सुन्दर शब्दों में कहा है—

'जननी जने तो शूर जन, भले बांझ रह जाएं।'

वीरश्रेष्ठ कुंवरसिंह की मृत्यु के बाद उसके छोटे भाई अमरसिंह ने सेना और राज्य की बागडोर संभाली। वह जगदीशपुर से बाहर निकल, अंगरेज़ी सेना की खोज में चल पड़ा। आरा नगर में जनरल लीग्रेंड को जा पकड़ा। भीषण युद्ध हुआ, एक बार फिर अंगरेज़ी सेना भाग खड़ी हुई। इस बीच जन-

रल लगर्ड और डगलस भी अपनी विशाल सेनाएं लेकर आ पहुंचे। ३ मई को वीर अमरसिंह की इनसे टक्कर हो गई। भारतीय स्वतन्त्रता के पुजारी सैनिकों ने अंगरेजों से कई युद्ध किए और उन्हें थका दिया। तंग आकर जनरल लीग्रैंड और जनरल लगर्ड ने त्यागपत्र दे दिया। अब जनरल डगलस ने पूरे दल-बल के साथ वीर अमरसिंह पर आक्रमण किया। परन्तु अमरसिंह ने अपने स्वर्गीय भ्राता के पद-चिह्नों पर चलते हुए शत्रु को ऐसा छकाया कि उनसे कुछ भी करते न बना। कई मास तक वह निरन्तर लड़ता रहा और अन्त में आरा और जगदीशपुर में जाकर विजय की घोषणा कर दी।

अब सात अंगरेजी सेनाओं ने १७ अक्तूबर को कई ओर से जगदीशपुर को घेर लिया। वीर अमरसिंह ने देखा कि उनसे पार पाना कठिन है इसलिए वह आंधी की गति से झपटता हुआ व एक ओर से अंगरेजी सेना को चीरता हुआ दूर निकल गया। १९ अक्तूबर को नौनदी ग्राम में फिर अंगरेजों से उसकी टक्कर हो गई। इस समय अमरसिंह के पास केवल चार सौ सैनिक थे। यहां बड़ा भीषण युद्ध हुआ। एक-एक करके भारतीय वीर शत्रु के हृदयों पर अपनी वीरता की छाप छोड़ते हुए स्वर्ग सिधार गए। केवल अमरसिंह और उसके दो साथी बच निकले। अंगरेजों ने बहुत हाथ-पांव मारे परन्तु वह वीर पकड़ा न जा सका और कैमूर की पहाड़ियों में चला गया। आज तक उस वीरश्रेष्ठ अमरसिंह का कुछ पता न चला कि उनका क्या हुआ।

वीर अमरसिंह के जगदीशपुर छोड़ने पर वहां की वीरांगनाओं ने स्वयं अपनी तोपों के आगे खड़े होकर अपना बलिदान कर दिया, परन्तु शत्रु से अपमानित होना स्वीकार न किया।

यह है वीरभूमि बिहार की अमर गाथा।

अवध का अमर वीर

अहमदशाह

○○○○○

सन् १८४७ में नवाब वाजिदअली शाह अवध की राजगद्दी पर बैठा। यह नवयुवक बुद्धिमान, वीर और सदाचारी था। नियमों का पालन करना और करवाना यह खूब जानता था। प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय से पहले अपनी सारी सेना के साथ मिलकर परेड करता था। लखनऊ दरबार में अधिक से अधिक और शक्तिशाली सेना जुटाना इसका लक्ष्य था। हिन्दू और मुसलमान प्रजा इसके राज्य में सन्तुष्ट और प्रसन्न थी। अंगरेज़ों को यह सब सहन न हुआ। सन् १८५६ में भारत के वायसराय लार्ड डलहौजी ने घोषणा कर दी कि नवाब वाजिदअली शाह चूंकि अयोग्य और विलासी है, इसलिए उस राज्य को शीघ्र ही अंगरेजी राज्य में मिला लिया जाएगा। जिस नीति से अंगरेज़ों द्वारा महारानी लक्ष्मीबाई और अन्य राजाओं को झूठ-मूठ दोषी ठहराकर उनके राज्य को छीना गया था, ठीक उसी प्रकार का विषैला प्रचार नवाब वाजिद-

अली शाह के विरुद्ध भी किया गया। डलहौज़ी ने प्रचार किया कि नवाब वाजिदअली शाह इतना विलासी है कि उसने सैकड़ों विवाह किए हैं। और मुझे जब लखनऊ जाने का अवसर प्राप्त हुआ तो मैं यह देखकर चकित रह गया कि लखनऊ के बच्चे-बच्चे के हृदय-पटल पर नवाब वाजिदअली शाह की विलासिता की कहानियां अंकित हैं। इक्के वाले, टांगे वाले उन विलास से भरपूर गाथाओं को बड़े चाव से आने-जाने वाले यात्रियों को सुनाते हैं। लोग सचमुच ऐसा समझते हैं कि लखनऊ नगर की बहुत बड़ी जनसंख्या नवाब वाजिदअली शाह की सन्तान है। यह एक विचित्र बात है कि भारतवासी जन उस विषैले प्रचार से ऐसे प्रभावित हुए कि अपने इतिहास तक को भूल गए। एक बात की प्रशंसा किए बिना मैं नहीं रह सकता कि लखनऊ नगर के लोगों की बोल-चाल और बर्ताव में इतनी मधुरता और शिष्टाचार है कि मैं उससे बहुत प्रभावित हुआ। जहां इस प्रान्त की बोल-चाल मधुर है, वहां यह प्रान्त हरा-भरा और लहलहाते खेतों से भरपूर है। आमों के वृक्ष, इमली के वृक्ष, सन्तरे के उद्यानों की सुगन्ध और भिन्न-भिन्न प्रकार के फलों-फूलों से भरा यह सुरम्य प्रदेश है।...साथ ही साथ इस प्रान्त के धनी होने की धूम देश-विदेश तक जा फैली थी। देश स्वतंत्र होने के बाद नवाब के वंशज ने बताया है कि असंख्य धन-सम्पत्ति भूमि में गड़ी हुई है। संभव है, इन्हीं कारणों से वायसराय लार्ड डलहौज़ी के मुंह में पानी भर आया हो और वह ओछे हथियारों पर उतर आया हो

एक दिन लखनऊ का रेज़िडेंट ऊटरम नवाब के महलों में

जा पहुंचा और एक पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए उसे विवश किया। पत्र में लिखा था कि मैं प्रसन्नता से अपना राज्य अंगरेज़ों को सौंपता हूं। नवाब ने स्पष्ट शब्दों में इंकार कर दिया। इसपर अंगरेज़ी सेना ने महलों को लूट लिया, स्त्रियों का अपमान कर, नवाब को बन्दी बनाकर कलकत्ते भेज दिया। राज्य पर अंगरेज़ों ने अधिकार कर लिया।

अंगरेज़ों के इस अत्याचार से दुःखी होकर अवध की जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। बिठूर के नानासाहब के साथ सम्बन्ध स्थापित कर नवाब के मन्त्री अली नकीखां और महारानी हज़रतमहल ने गुप्त रूप से हिन्दू साधुओं और मुसलमान फकीरों द्वारा मातृभूमि के एक-एक राजा, सारी भारतीय सेना और अवध के सभी प्रतिष्ठित घरानों को अंगरेज़ों के विरुद्ध भड़काना और एकत्र करना शुरू किया। इसपर सहस्रों हिन्दू और मुसलमान एक झण्डे तले एकत्र हो गए। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस क्रान्ति का निशाना हरा झण्डा, नेता दिल्ली का सम्राट बहादुरशाह और दो चिह्न एक 'कमल का फूल' और दूसरा 'रोटी' प्रचार करने के लिए निश्चित हुए। 'रोटी' एक ग्राम से दूसरे ग्राम भेजी जाती थी। इस ग्राम के सब लोग एकत्र हो उस रोटी का एक-एक ग्रास खाकर प्रतिज्ञा करते थे कि जब तक शरीर में एक भी सांस शेष है, मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए लड़ते रहेंगे। इसके बाद इसी ग्राम में एक और रोटी बनाकर दूसरे ग्राम में भेजी जाती थी। इस प्रकार ग्राम-ग्राम में क्रान्ति का प्रचार किया जाता था। सभी लोगों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य किया। अवध



प्रान्त ने जितने अच्छे संगठन के साथ क्रांति में भाग लिया, उतना अच्छा संगठन कहीं और नहीं था।

३० मई की रात्रि को ६ बजे लखनऊ छावनी में विद्रोह शुरू हुआ। ७, ७१ और ४८ और नम्बर की भारतीय सेनाओं ने मिलकर अंगरेज सैनिकों को मार डाला और हरा झण्डा फहरा दिया। लेकिन उन्होंने अंगरेज स्त्रियों और बच्चों का बाल भी बांका नहीं होने दिया।

फैजाबाद नगर के ताल्लुकेदार मौलवी अहमदशाह ने दिन-रात स्थान-स्थान पर घूमकर ऐसा प्रचार किया कि अंगरेज घबरा उठे। अंगरेजी सेना तत्क्षण फैजाबाद पहुंच गई और उसे बन्दी बनाकर फांसी देने का निश्चय किया। यह देख वहां खड़े भारतीय सैनिकों और लोगों के हृदयों में आग लग गई। उन्होंने अंगरेज अधिकारी की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया और सूबेदार दलीपसिंह ने आगे बढ़कर सब अंगरेजों को बन्दी बना लिया और अहमदशाह की हथकड़ियां व बेड़ियां काट दी गईं। मौलवी अहमदशाह को नेता चुन लिया गया। साथ ही साथ घोषणा कर दी गई कि नवाब वाजिदअली शाह का राज्य हो गया है। नवाब चूंकि कलकत्ते में बन्दी है, इसलिए उनके पुत्र नवाब बिरजिस कद्र को राजा बनाया गया है। बिरजिस कद्र अभी बालक है, इसलिए राज्य का कार्यभार उसकी माता बेगम हजरतमहल को सौंपा गया। सालोनी के जमींदार सरदार रुस्तमशाह और काला के राजा हनुमन्तसिंह सेनाएं एकत्र कर लखनऊ को चल पड़े। इस प्रकार लखनऊ नगर का कुछ भाग छोड़, सारा अवध स्वतंत्र हो गया। स्थान-स्थान से सहस्रों स्वयं-

सेवक आ-आकर भरती होने लगे। बड़े-बड़े जमींदारों ने भी भरपूर सहयोग दिया।

२६ जून, सन् १८५७ को सर हेनरी लारेन्स का भारतीय सेना के साथ लोहे के पुल पर भयंकर युद्ध हुआ। अंगरेज़ हारकर दो तोपें छोड़कर भाग खड़े हुए और रेज़ीडेन्सी में जा छिपे। भारतीय क्रान्तिकारियों ने उस सुन्दर भवन को घेर लिया। घिरे अंगरेज़ों के पास अस्त्र-शस्त्र और खाने-पीने की कमी नहीं थी, इसलिए यह घेरा बहुत दिनों तक चला।

लखनऊ की स्वतन्त्रता का समाचार पाकर कानपुर-विजय करने के बाद जनरल हैवलाक लखनऊ की ओर बढ़ा। यहां के प्रत्येक जमींदार ने कई-कई सौ योद्धा एकत्रित कर रखे थे। प्रत्येक गांव पर स्वतन्त्रता का चिह्न हरा झण्डा लहरा रहा था। जनरल हैवलाक गंगा पार कर उन्नाव के पास पहुंचा। यहां के ब्राह्मण और क्षत्रिय अंगरेज़ी सेना को देखते ही 'मारो फिरंगी को' और 'भारतमाता की जय' के नारों से आकाश को गुंजाते हुए शत्रु पर टूट पड़े। यहां ऐसा भीषण संग्राम हुआ कि जनरल हैवलाक को प्राणों की रक्षा करनी कठिन हो गई। अंगरेज़ी सेना युद्धभूमि छोड़ भाग खड़ी हुई। किसी न किसी प्रकार अंगरेज़ी सेना लुकती-छिपती हुई बशीरतगंज तक जा पहुंची। २६ जुलाई को यहां के क्रान्तिकारी वीरों ने इतना भयंकर युद्ध किया कि विवश हो अंगरेज़ी सेना को मगरवारे तक पीछे लौटना पड़ा।

फिर उत्साह करके ४ अगस्त को जनरल हैवलाक लखनऊ की ओर बढ़ा। बशीरतगंज में एक बार फिर भारतीय क्रान्ति-

कारी वीरों ने अंगरेज़ों को नाकों चने चबवा दिए। अंगरेज़ों के तीन सौ सैनिक मारकर भारतीय वीरों ने उस युद्ध को विजय कर लिया। हार खाकर जनरल हैवलाक कानपुर की ओर लौट पड़ा।

१६ अगस्त को फिर तीसरी बार जनरल हैवलाक बशीरतगंज की ओर बढ़ा। मार्ग में उन्नाव के पास ही एक बार ऐसा विकट संग्राम हुआ कि ग्रामीण लोगों ने जनरल हैवलाक के छक्के छुड़ा दिए और वह निराश हो कानपुर की ओर लौट आया।

इधर इलाहाबाद से अंगरेज़ी सेना पूरे दल-बल के साथ लखनऊ को चल पड़ी। मार्ग में ग्राम-ग्राम में जनता का विध्वंस करती हुई, अनेक गांवों को अग्नि की भेंट करती हुई यह सेना ९ नवम्बर, सन् १८५७ को आलमबाग आ पहुंची। कई बड़े-बड़े प्रसिद्ध अंगरेज जनरल कैम्पवेल, हैवलाक, ऊटरम, पील, ग्रेटहैंड, हडसन, होपग्रांट, आयर तथा सिख सेनाएं और चीन आदि देशों से आई हुई टुकड़ियां भी उसमें आ जुड़ी थीं। इस सेना ने रेज़ीडेन्सी की ओर बढ़ १४ नवम्बर को भारतीय क्रान्तिकारी वीरों पर भयंकर आक्रमण किया। बढ़ती हुई अंगरेजी सेनाएं १६ नवम्बर को सिकन्दरबाग आ पहुंचीं। अंगरेजी सेना ने बहुतेरा यत्न किया कि वह बाग में घुस पाए, परन्तु वीर भारतीयों ने उसकी एक न चलने दी। फिर अंगरेजी सेना सीढ़ियों के द्वारा दीवार पर चढ़ने लगी। इस प्रयत्न में दो अंगरेज जनरल कूपर और लम्सडेन मारे गए। शवों के ढेर के ढेर लग गए। अन्त में अंगरेज दीवार

फांदने में सफल हो गए। अब उनका क्रान्तिकारी सेना से घमासान युद्ध छिड़ गया। सिकन्दरबाग के एक-एक कमरे, एक-एक कोने, एक-एक सीढ़ी और एक-एक मीनार पर बड़ा भीषण युद्ध लड़ा गया और अन्त में एक-एक भारतीय वीर देश की वेदी पर बलिदान हो गया परन्तु पराधीनता स्वीकार न की। दो सहस्र से ऊपर क्रान्तिकारी वीरों के शव के शव चारों ओर लुढ़के पड़े थे। सारी भूमि रक्त से लाल हो रही थी। यदि हमारे देश के एक-एक बच्चे में ऐसी दृढ़ता, उत्साह और संगठन भर जाए तो किसकी शक्ति है जो हमारी ओर आंख उठाकर भी देख सके।

८७ दिन घिरे रहने के बाद रेजिडेन्सी में घिरे अंगरेज़ों को मुक्ति मिली, परन्तु नगर पर अब भी क्रान्तिकारी वीरों का अधिकार था। इन ८७ दिनों के भीतर रेज़ीडेन्सी में लगभग सात सौ व्यक्ति मारे जा चुके थे। शेष ६०० बचे थे, जिनमें घायलों और रोगियों की भरमार थी। मौलवी अहमदशाह क्रान्तिकारियों में सबसे योग्य सेनापति था, जिसकी सराहना अंगरेज़ इतिहासकार होम्ज़ ने बड़े सुन्दर शब्दों में की है। जिस भूल के कारण कालपी, ग्वालियर और दिल्ली में क्रान्तिकारी नेताओं की हार हुई, उस भूलने यहां भी पीछा न छोड़ा। अभी भी नगर में भारतीय क्रांतिकारी वीर बहुत बड़ी संख्या में थे। यहां कई सेनापति थे, परन्तु एक-दूसरे के अधीन रहकर काम करना वे अपना अपमान समझते थे। यही कारण इन्हें यहां भी ले डूबा। अहमदशाह ने बहुतेरा प्रयत्न किया कि सब मिलकर एक साथ ही अंगरेज़ी सेना पर टूट

पड़ें। परन्तु सबने 'अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग' बजाया। कोई निश्चय न हो सका।

प्रतिदिन भारतीय क्रांतिकारी वीरों और अंगरेज़ी सेना में युद्ध होता रहा। १५ जनवरी, सन् १८५८ को ऐसा विकट युद्ध हुआ कि अंगरेज़ी सेना को छठी का दूध याद आ गया। परन्तु दुर्भाग्य से इस दिन वीर नेता मौलवी अहमदशाह का एक हाथ घायल हो गया। यह समाचार पाकर तत्क्षण बेगम हज़रतमहल घोड़े पर सवार हो युद्ध में कूद पड़ी। इस वीरांगना ने युद्ध-भूमि में पहुंच ऐसी वीरता दिखाई कि क्रांति के पुजारी वीरों ने उत्साह में भरकर अंगरेज़ी सेना को एक बार तो पीछे खदेड़ ही दिया। परन्तु अंगरेज़ी सेना एक अथाह सागर थी, उसका पार पाना इन वीरों के बस का रोग न था।

हाथ के थोड़ा ठीक होते ही १५ फरवरी को फिर मौलवी अहमदशाह युद्धभूमि में आ गरजा। इस समय तक क्रांतिकारी वीरों की बहुत हानि हो चुकी थी। वीरश्रेष्ठ राजा बालकृष्ण-सिंह युद्धभूमि में मारे जा चुके थे। एक और सेनापति विदेही हनुमन्तराव घायल हो अंगरेज़ों के हाथों बन्दी बन चुका था फिर भी क्रान्तिकारियों और अंगरेज़ों के बीच भयंकर युद्ध हुए। एक-एक गली, एक-एक बाजार, एक-एक घर के लिए भीषण संग्राम हुए, परन्तु क्रान्तिकारी वीरों ने एक स्थल पर भी शत्रु के आगे सिर नहीं झुकाया, और अन्त तक लड़ते ही रहे। ६ मार्च तक निरन्तर युद्ध होता रहा। इस विशाल अंगरेज़ी सेना के आने के बाद भी तीन मास तक इन क्रांति-कारी वीरों ने शत्रु को नगर पर अधिकार नहीं करने दिया।

१० मार्च को प्रसिद्ध अंगरेज़ जनरल हडसन मारा गया। भारतीय वीरों की संख्या कम होने के साथ-साथ अंगरेज़ों का नगर पर अधिकार होने लगा। धीरे-धीरे नगर का बहुत बड़ा भाग दिलखुशबाग, कदम रसूल, शाह नजफ, बेगम कोठी अंगरेज़ों के अधिकार में आ गया। १४ मार्च को राजप्रासाद भी शत्रु के अधिकार में आ गया। स्थिति से निराश हो, अहमदशाह ने नगर छोड़ दिया। बेगम हज़रतमहल और नवाब बिरजिस कद्र पहले ही लखनऊ छोड़ चुके थे। अब क्या था, अंगरेजों ने नगर पर पूरा अधिकार कर लिया और लूट-मार की धूम मचा दी। सहस्रों निरपराध लोगों का वध कर दिया गया। बहुतों को तो जीवित ही आग में भून दिया गया। स्थान-स्थान पर देवियों को अपमानित किया गया।

इधर बेगम हजरतमहल का बर्ताव भी सुनो। इसके पास सैकड़ों अंगरेज बच्चे और स्त्रियां कई मास तक रहे। परन्तु बेगम ने उनकी ओर किसीको आंख तक न उठाने दी। यह है भारतीय सदाचार का नमूना !

एक बार फिर वीर अहमदशाह ने बारी ग्राम के पास तीस सहस्र अंगरेजी सेना को घेरने का यत्न किया। उसने अपनी सेना के दो भाग किए। एक को आज्ञा दी कि तुम शत्रु पर सीधा आक्रमण करो और दूसरे भाग को आदेश दिया कि जिस समय ये दोनों सेनाएं आपस में गुत्थमगुत्था हो जाएं, तुम लोग पीछे से जाकर झपाटे के साथ ऐसा भीषण आक्रमण करो कि अंगरेज घबरा जाएं, फिर मैं देख लूंगा। परन्तु दुख की बात है कि उसकी आज्ञा का ठीक-ठीक पालन नहीं हुआ।

दोनों सेनाओं ने शीघ्रता में एक साथ ही धावा बोल दिया। परिणाम यह हुआ कि अहमदशाह की बहुत-सी सेना मारी गई और अंगरेज़ जीत गए। यहां शत्रु ने अहमदशाह को पकड़ने के लिए बहुत हाथ-पांव मारे, परन्तु यह वीर अंगरेज़ों के चंगुल से बच निकला।

दिल्ली का राजकुमार फीरोजशाह, नानासाहब, बालासाहब, राजा तेजसिंह, खां बहादुरखां, बेगम हज़रतमहल, नवाब बिरजिस कद्र और अहमदशाह शाहजहांपुर में एकत्रित हुए। १५ मई को अंगरेज़ जनरल सर कालिन और सर कैंपवैल से इनके भयंकर युद्ध हुए। अंगरेजों ने नगर को चारों ओर से घेर लिया। अंग्रेज़ों के बहुत प्रयत्न करने पर भी इनमें से एक क्रांतिकारी नेता भी उनके हाथ न आया और वे निकलकर अन्यत्र चले गये।

वीर अहमदशाह किसी भी प्रकार पकड़ा नहीं जा रहा था। चारों ओर से अंगरेजी सेनाएं उसे पकड़ने के लिए सरतोड़ यत्न कर रही थीं। फिर भी वह वीर रुहेलखंड से होता हुआ अवध प्रान्त की सीमा में पहुंच गया। यहां पर 'पवन' नाम का एक छोटा-सा राज्य था। वीर अहमदशाह ने उससे क्रांति के लिए सहायता चाही। यहां के राजा जगन्नाथसिंह ने उसे बड़े आदर से अपने राज्य में बुलवाया। वीर अहमदशाह हाथी पर चढ़कर नगर की ओर बढ़ा। प्रवेश-द्वार के पास पहुंचते ही राजा के भाई ने विश्वासघात कर उस वीर पर गोली चला दी। गोली लगते ही वीर अहमदशाह का शरीर हाथी पर से लुढ़क गया और प्राणान्त हो गया। आगे बढ़कर

राजा जगन्नाथसिंह ने तुरन्त अहमदशाह का सिर काट लिया। सिर को कपड़े में बांध इस देशद्रोही ने स्वयं शाहजहांपुर की छावनी पहुंच उसे अंगरेज़ों को सौंप दिया। लोगों को भयभीत करने के लिए अंगरेजों ने उस सिर को शाहजहांपुर नगर की कोतवाली के पास टांग दिया। इस प्रकार अवध के सबसे पराक्रमी वीर का अन्त भी अपने ही भाइयों के विश्वासघात के कारण हुआ।

सच ही कहा है—'घर का भेदी लंका ढाहे'।

क्रांति के समाप्त होने के बाद भी ६ मास तक अवध के वीरों ने अंगरेज़ों से कई स्थानों पर युद्ध किए। इस प्रान्त के वासियों ने क्रांति में जो बलिदान दिया वह इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा।

पंजाब के क्रांतिकारी

○ ○ ○ ○ ○

जब सारे देश में क्रांति का प्रचार किया गया, तो पंजाब की वीरभूमि के सैनिक कैसे पीछे रह सकते थे। लाहौर नगर में चार भारतीय सेनाएं थीं। इन सैनिकों ने भी क्रांति में कूदने का निश्चय किया। अंगरेज़ अधिकारियों को इस योजना का रत्ती-रत्ती पता लग गया और उन्होंने मई मास में ही इन चारों सेनाओं से हथियार रखवा लिए और उनपर कड़ा पहरा लगा दिया।

३० जुलाई की रात्रि को २६ नम्बर सेना के ये निहत्थे सैनिक छावनी से निकल पड़े। इन्होंने रावी नदी के पार जाने का यत्न किया। ये सैनिक खाली हाथ रावी के किनारे-किनारे अमृतसर की ओर बढ़े। चलते-चलते यह भूखे-प्यासे और थके हुए सैनिक अजनाला से ६ मील दूर रावी के तट पर जा रुके।

सर राबर्ट मिंटगुमरी और अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर फ्रेडरिक कूपर ने सैनिकों को आज्ञा दी कि इनका पीछा करो।

लगभग ४ बजे सायंकाल के समय ९० सवारों ने वहां पहुंचते ही उन खाली हाथ सैनिकों पर गोलियों की बौछार कर दी। अपनी जीवन-रक्षा के लिए ये सैनिक रावी नदी में कूद पड़े। भूख और प्यास से व्याकुल ये सैनिक पहले ही बहुत थके हुए थे, गोलियों से आहत ये सैनिक जब नदी में कूदे, तो उनके रक्त से नदी का जल लाल ही लाल हो गया। तैरते-तैरते ये सैनिक कुछ आगे बढ़े कि किनारे पर खड़े साठ सिख सैनिकों ने चुन-चुनकर नदी के भीतर गोलियां बरसाईं। इन सैनिकों में से साठ-सत्तर सैनिक तो नदी के बहाव में बह गए। इनमें से १५० के लगभग गोलियों से मारे गए। शेष २८२ सैनिकों को बन्दी बना लिया गया।

लगभग आधी रात के समय, जबकि घनघोर वर्षा हो रही थी, जल में भीगते हुए इन सैनिकों को अजनाले के



थाने में लाया गया। इन सबको फांसी देने के लिए पहले से ५० सिख सैनिकों का प्रबन्ध किया जा चुका था। उनमें से बहुतों को तो उस समय थाने में बन्द कर दिया गया और शेष ६६ सैनिकों को एक छोटे-से गुम्बद में बन्द कर दिया गया। यह स्थान इतना तंग था कि इसमें इतने आदमी आ ही नहीं सकते थे। इसके चारों द्वारों को भी बन्द कर दिया गया था। इस गुम्बद को आज भी लोग 'काल्यांदा खूह' के नाम से पुकारते हैं।

अगले दिन १ अगस्त को बकरीद का त्योहार था। इन बन्दी सैनिकों को दस-दस की टोली में थाने पर लाया जाता और गोलियों से उड़ा दिया जाता।

इस प्रकार थाने वाले सभी सैनिक गोलियों से भून दिए गए, तो गुम्बद वाले सैनिकों की बारी आई। इनमें से भी २१ सैनिकों को मार डाला गया तो पता लगा कि शेष ४५ सैनिक पानी और वायु की कमी के कारण पहले ही गुम्बद में मरे पड़े हैं। सम्भव है, उनमें से अभी कई सिसक रहे हों। अब उन सब सैनिकों को घसीट-घसीटकर बाहर लाया गया।

अब प्रश्न यह सामने आया कि इन २८२ शवों को कैसे ठिकाने लगाया जाए। थाने से सौ गज की दूरी पर एक पुराना कुआं था। इन सब शवों को घसीट-घसीटकर मेहतरों ने कुएं में डाल दिया और उनके ऊपर मिट्टी डाल दी गई। इस प्रकार यह कुआं एक टीला बन गया।

इस घटना का पूरा-पूरा वर्णन अपनी लिखी पुस्तक में फ्रेडरिक कूपर ने बड़े ही गर्व से किया है। इसका शीर्षक

'ब्लैकहौल आफ अजनाला' के नाम से दिया है ।

इन सैनिकों के कुछ साथी जो भाग निकले थे, उन्हें भी पकड़-पकड़कर लाहौर और अमृतसर में तोप के मुंह से उड़ा दिया गया ।

इस प्रकार सन् १८५७ के पहले स्वतन्त्रता-संग्राम का पंजाब प्रान्त का यह छोटा-सा इतिहास भी काफी दर्दनाक है ।

एक नवयुवक राजा

○ ○ ○ ○ ○

जून और जुलाई, सन् १८५७ में हैदराबाद (दक्षिण) के लोगों में क्रांति के लिए बड़ा उत्साह था। बड़े-बड़े मौलवी प्रचार-कार्य में लगे हुए थे। मस्जिदों में बड़ी-बड़ी सभाएं हुईं और हैदराबाद नगर का एक-एक बालक क्रांति में अपना बलिदान देने को उद्यत हो गया। परन्तु देशद्रोही निजाम अफजुलद्दौला और उसका मन्त्री सालारजंग मातृभूमि से विश्वासघात करने पर तुले हुए थे। उन्होंने अंगरेजी सेना को बुलवाकर जनता को इतना भयभीत कर दिया कि हैदराबाद नगर में कुछ भी न हो सका।

इस राज्य के पास एक छोटा-सा हिन्दू राज्य जोरापुर के नाम से प्रसिद्ध था। यहां का राजा एक छोटी आयु का बालक था। इसने रुहेले और अरब पठानों की एक सेना बना रखी थी। यह बालक राजकुमार क्रांति के लिए उत्सुक हो रहा था। फरवरी, सन् १८५८ में वह हैदराबाद आया और वहां



के मन्त्री को मिला। मन्त्री सालारजंग ने धोखे से उसे अंगरेजों के हाथ पकड़वा दिया। इस बीच एक अंगरेज अधिकारी मीडोज़ टेलर उसका मित्र बन गया। राजकुमार उसे प्रेम से 'अप्पा' कहकर पुकारता था। एक बार इसी अंगरेज़ ने उससे क्रांतिकारियों के नाम और पते पूछे। वह वीर बालक निर्भयता से बोला, "अप्पा, यह कभी नहीं हो सकता, मैं देशद्रोह की अपेक्षा मृत्यु को प्यार करता हूं।" अंगरेज अधिकारी ने उसे फुसलाने का बहुतेरा यत्न किया, परन्तु वह वीर बालक सिंह की भांति निर्भय होकर बोला, "मुझे चाहे तोप के आगे उड़ा दो, फिर भी देशद्रोह नहीं कर सकूंगा।"

अंगरेज अधिकारी की आंखों में आंसू छलछला आए और वह मन ही मन बोला, 'अहा, यदि सब भारतवासियों में ऐसी

देशभक्ति हो तो हम एक क्षण-भर भी इस देश में नहीं रह सकते।'

एक दिन राजकुमार ने झपटकर एक अंगरेज पहरेदार की पिस्तौल छीन ली और देखते ही देखते अपने-आपको गोली मारकर सदा के लिए शान्त हो गया।

यह वीर राजकुमार जब तक जिया, देश के लिए जिया और मरकर भी मातृभूमि का मस्तक ऊंचा कर गया।

नारगुंड (दक्षिण) का राजा

बाबासाहब

○○○○○

यह राज्य भी जोरापुर के पास ही था। इस राजा का पूरा नाम भास्करराव बाबासाहब था। इसकी रानी बड़ी वीर और देशभक्त थी। इस देवी के हृदय में सदा तड़प रहा करती थी कि कब हमारा देश स्वतन्त्र हो। और उसके लिए वह सदा बड़े से बड़ा त्याग करने को उद्यत रहती थी। यह देवी हर समय अपने पति को अंगरेज़ों के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरणा करती रहती थी।

इधर सारे देश में क्रांति की अग्नि प्रदीप्त हो चुकी थी। ऐसे समय में वीर रानी की तपस्या रंग लाई। २५ मई, सन् १८५८ को बाबासाहब ने अंगरेजों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। समाचार पाते ही अंगरेज़ जनरल मानसन तुरन्त नारगुंड की ओर बढ़ा। बाबासाहब ने आगे बढ़कर रात्रि के अन्धकार में मानसन की सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। बड़ा भीषण युद्ध हुआ। दक्षिण के वीरों ने अंगरेज़ी सेना को गाजर-मली

की भांति काटकर धूल में मिला दिया। अंगरेज़ जनरल मानसन मार डाला गया और आबासाहब की विजय हुई। दूसरे दिन मानसन का सिर नारगुंड की दीवार पर लटका दिया गया।

बाबासाहब का एक सौतेला भाई था। वह सदा अपने भाई से जला करता था और राजा को नीचा दिखाने का यत्न किया करता था। ऐसे अवसर पर वह देशद्रोही भागकर अंगरेज़ों से जा मिला। उसकी सहायता प्राप्त होने पर अंगरेजों का उत्साह बढ़ गया और उन्होंने पूरे बल से विशाल सेना के साथ नारगुण्ड पर आक्रमण कर दिया। दक्षिणी वीर राजा बाबासाहब तनिक भी विचलित न हुआ और अपनी छोटी-सी सेना लेकर युद्धभूमि में आ डटा। बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। दक्षिणी वीरों ने आंधी के वेग से 'मातृभूमि की जय'



श्रौर 'बाबासाहब की जय' के नारों से श्राकाश को गुंजा दिया। युद्धभूमि में वीर कट-कटकर गिरने लगे। रक्त की धार बह निकली। बाबासाहब के सैनिक बड़ी वीरता से लड़े। परन्तु एक छोटा-सा राजा कब तक लड़ता! श्रन्त में वह हार गया श्रौर पकड़ा गया। १२ जून, सन् १८५८ को उसे फांसी दी गई। उसकी वीर रानी श्रौर माता ने मालप्रभा नदी में कूदकर श्रपने धर्म की रक्षा की।

इसी प्रकार एक श्रौर स्वाधीनता के पुजारी दुर्ग के राजा भीमराव ने भीलों को एकत्र कर श्रंगरेज़ों से युद्ध किया, परन्तु सफल न हुश्रा। यह राज्य खानदेश में है।

इसी प्रकार रंगून (बर्मा) में भी थोड़ी-बहुत क्रान्ति हुई, परन्तु सफलता न मिली।

उपसंहार

○○○○○

सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में भारतवासियों को सफ़लता न मिली। इसके जो कारण थे वे इस पुस्तक में यत्र-तत्र दिए गए हैं। इस क्रान्तिकारी युद्ध में भारतीयों ने जो बलिदान दिए उनसे अंगरेज़ शासकों की आंखें खुल गईं। जितनी सरलता और शीघ्रता से वह भारत को निगलना चाहते थे, उसमें उन्हें सफलता न मिली।

१ नवम्बर, सन् १८५८ को भारत के वायसराय लार्ड कैंनिंग ने भारत की सम्राज्ञी विक्टोरिया की घोषणा को इलाहाबाद में पढ़कर सुनाया। जिसके अनुसार—

(१) अब से भारत का सारा राज्य प्रबन्ध अंगरेज़ सरकार ही करेगी, और ईस्ट इण्डिया कम्पनी को समाप्त किया जाता है। (२) भारतीय राजाओं को बालक गोद लेने का पूरा अधिकार है। भविष्य में सरकार किसी राज्य में हस्तक्षेप न करेगी। (३) शांति स्थापित होते ही देश में स्थान-स्थान पर

भारतीय कारीगरी को प्रोत्साहित करने के लिए बड़े-बड़े उद्योग चलाए जाएंगे, ताकि भारतवासी सुखी और सम्पन्न हों। (४) सरकार किसी भी भारतवासी के धर्म में हस्तक्षेप न करेगी। इसी प्रकार जनता को ईसाई बनाने में बल का प्रयोग नहीं किया जाएगा। (५) गाय और सूअर की चरबी से बने कारतूसों का प्रयोग नहीं किया जाएगा।

देश को उन्नत करने के लिए और भी कई योजनाएं बनाई गईं और पहला स्वतन्त्रता-संग्राम अपने उद्देश्य में सफल हुए बिना बीच में समाप्त-सा हो गया।

पर यह स्वाधीनता-संग्राम एकदम बेकार नहीं गया। यद्यपि एक लम्बे अरसे के लिए देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ गया, फिर भी इससे देशवासियों में एकता की एक अटूट लहर-सी दौड़ गई। सन् १९४७ में हमने जो आज़ादी ली, उसकी पृष्ठभूमि में क्या पहले स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास नहीं है ? क्या वीरता के वे उज्ज्वल कारनामे हमारे देश के जन-जन के लिए प्रेरणा का विषय नहीं बने ? आज स्वतन्त्र भारत के नागरिक होने के नाते, उन अमर आत्माओं के प्रति हमारे मस्तक श्रद्धा से नत हैं।

अन्त में मैं अपने देशवासी भाई और बहिनों की सेवा में निवेदन करना चाहता हूं कि यदि वास्तव में अपने देश को उन्नत, समृद्धिशाली और सुखी करना चाहते हो तो सब बुराइयों की जड़ स्वार्थों को छोड़कर ऊंच-नीच, छोटे-बड़े, जात-पांत के सब भेदों को मिटाकर संगठित हो जाओ, और हम अविजित रहेंगे।